



“हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में भारत विभाजन” भारतीय मुसलमानों के विशेष संदर्भ में

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की

पी०एच-डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-सार

2008

निर्देशक :

डा० भरत सिंह

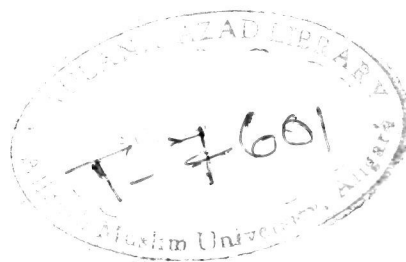
रीडर हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़-202002

शोधकर्ता :

मुहम्मद आरिफ

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़-202002

वर्ष 2012



05 JUN 2012

शोध सार

प्रस्तावना में बताया गया है कि अपने मौजूदा शोषक रूप में धर्म का उदय वर्ग समाज के साथ हुआ। धर्म अधिरचना का सबसे अधिक गूढ़ एवं मजबूत अंग है। अधिरचना के अन्य अंगों उपांगों की भांति धर्म भी आधार को तब्दील करने में निर्णायक भूमिका नहीं निभाता; बल्कि सदैव आधार से व्युत्पादित, अनुशासित और व्यवस्थित होता रहता है। वर्ग समाज में धर्म यदि एक ओर शोषकों के हाथों शोषण का हथियार बनता है तो दूसरी ओर शोषित वर्ग की वेदना और विद्रोह को भी वाणी देता है। यही कारण है कि मध्यकाल में उठे सारे जन संघर्षों को अन्ततः धार्मिक जामा पहनना ही पड़ा। इसी क्रम में नये धर्मों की सृष्टि और पुरानों का विनाश अथवा परिष्कार हुआ। अब आधार में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हो पाता और उत्पादन प्रक्रिया ज्यों की त्यों बनी रहती है तो एक दौर में जन संघर्षों का नेतृत्व करने वाले प्रगतिशील धर्म कालान्तर में उत्पीड़कों के रक्षा कवच बन जाते हैं बौद्ध, ईसाई और इस्लाम धर्मों के उद्भाव और विकास इसी प्रक्रिया को दर्शाते हैं।

उत्पादन पद्धति की संवाहक राजनीति धर्म को तय करती है। धर्म राजनीति को तय नहीं करता। धर्म उतना ही राजनीति के आगे पीछे जा सकता है, जितना कि उत्पादन – पद्धति उसे इजाजत देती है। धर्म की नकेल राजनीति के हाथ में है, किन्तु प्रतिक्रियावादी विचारक इसके ठीक उल्टा देखते हैं। उनके यहां समाज भौतिक शक्तियों से संचालित नहीं होता, विचारों से होता है। ये विचार पेगम्बरों,

रसूलों और अवतारों में पैदा होते हैं, जिन्हें 'परम विचार'(ईश्वर) धरा-धाम पर परिवर्तन करने के लिए भेजता है। इन पैगम्बराके , रसूलां और अवतारों के विचार ही धर्म हैं, जो राजनीति तो क्या उत्पादन पद्धति तक को निर्धारित करते हैं। परन्तु इस भाववादी दृष्टिकोण की अब तक का मानव इतिहास पुष्टि नहीं करता।

राष्ट्र और धर्म अलग- अलग हैं; धर्म राष्ट्रीयता का आधार नहीं है, अगर धर्म राष्ट्रीयता का आधार होता तो यूरोप के सारे ईसाई देश एक राष्ट्र होते और एक ही ईसा के अनुयायी दो-दो विश्व युद्ध लड़कर करोड़ों व्यक्तियों की हत्या न करते । अगर धर्म ही राष्ट्रीयता का आधार होता तो सारे मुस्लिम देश एक राष्ट्र होते और एक ही किताब के हामी, एक ही पैगम्बर के अनुयायी , एक ही खुदा के बन्दे पाकिस्तान और बंगलादेश एक दूसरे से अलग न होते और न ही पाकिस्तान की इस्लामी सेना अपने बंगाली भाईयों पर वह कहर बर्पाती जिसे देख और सुनकर हैवानों के भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं । अगर धर्म ही राष्ट्रीयता का आधार होते तो सारी दुनिया में चार ही प्रमुख राष्ट्रीयताएं होतीं — ईसाई, इस्लाम, बौद्ध और हिन्दू।

अध्याय एक में दिखया गया हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में भारतीय जनता की आशा-आकांक्षा, भय और घृणा एवं प्रतियोगिता को हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायवाद के मिथ्या और विकृत रूप से प्रस्तुत किया था। औपनिवेशिक भारत में मुसलमान, मुसलमान के नाते तकलीफें नहीं सह रहे थे, बल्कि भारतीय श्रमिकों, किसानों, बेरोजगार नौजवानों, कारीगरों आदि के रूप में कष्ट भोग रहे थे और इसी रूप में हिन्दुओं को भी रखा जा सकता है। हिन्दू और मुसलमान परस्पर एक दूसरे के कष्टों का कारण न थे और न एक दूसरे को तकलीफें पहुंचा रहे थे। इन कष्टों

का करण भारत में औपनिवेशिक शासन था। औपनिवेशिक शासन के जुए को उतारकर फेंक देने से ही सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता था। अतः सम्प्रदायवाद के विरुद्ध राष्ट्रवादी विचारधारा ही सच्ची विचारधारा थी जो यथार्थ को सही रूप में प्रतिबिंबित करती थी।

राष्ट्रीय आंदोलन का दौर भारतीय नवजागरण का दौर भी है। नवजागरण में धार्मिकता का पुट होता है। राष्ट्रवादियों ने धर्म का सकारात्मक उपयोग किया। धर्म की उस मानवीय अंतर्वस्तु का उद्घाटन किया जो मन को मानवीय और जन को जनवादी बनाती थी, साम्राज्यवाद के खिलाफ गुस्सा पैदा करती थी; राष्ट्रीयता का ज्वार उठाती थी, साम्राज्यवाद विरोध की लहर को जन-चेतना का अंग बनाती थी। इसके विपरीत सांप्रदायवादी धर्म का नकारात्मक इस्तेमाल करते थे। धर्म की उस निषेधात्मक और तत्ववादी विचार सामग्री का उद्घाटन करते थे जो मन को विपाक्त और जन को जनद्रोही बनाती थी, साम्राज्यपरस्ती सिखलाती थी, राष्ट्रीयता के विरुद्ध खड़ी होती थी और जनता को साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में जाने से रोकती थी।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि गांधी जी के कारण साम्प्रदायिकता का प्रसार हुआ, क्योंकि उन्होंने धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल किया। लेकिन हम देखते हैं कि 24 वर्ष के नौजवान ने दक्षिण अफ्रीका में जो आंदोलन चलाया था उसमें मुसलमानों की बड़ी संख्या शामिल थी। गांधी जी ने जो सत्य, सत्याग्रह और अहिंसा के राजनीतिक औजार तैयार किये थे वह हिन्दू धर्म की सकारात्मक मानवीय अंतर्वस्तु की उपज थे और किसी भी दूसरे धर्म की सकारात्मक मानवीय अंतर्वस्तु के विरुद्ध नहीं थे। भारत में उनके पहले तीन आंदोलन—खेरा, चम्पारण और अहमदाबाद—

अधार्मिक थे। रौलट एक्ट विरोध जिसने गांधी जी को राष्ट्रीय नेता बनाया, भी धार्मिक नहीं था। गांधी जी की महात्मा की उपाधि धार्मिक नहीं थी। यह उपाधि गुरु, महर्षि और बाबा बैराइटी की नहीं थी। गांधी जी कभी धार्मिक व्यक्ति की तरह नहीं पूजे गये। उनकी मूर्तियां और फोटो नहीं पूजे गये। उनकी अपीलें धार्मिक सेंस में नहीं होती थीं, वह मॉरल सेंस रखती थीं। इसके अलावा हिन्दू-धार्मिकता के आरोप का जवाब देते समय वह मुस्लिम, सिख और क्रिश्चियन की ठीक वैसी ही धार्मिकता को प्रोत्साहित करते थे। वे धार्मिक राष्ट्रवादियों के साथ समझौता भी करते थे। उनकी धर्मनिरपेक्षता समस्त धर्मों के प्रभावों का प्रतिनिधित्व करती थी जिसे मोहम्मद अली ने धर्मों का संघ कहा था। गांधी जी ने मौलाना आजाद को धार्मिक आधार पर मुसलमानों के बीच कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था। खिलाफत का इस्तेमाल गांधी जी ने साम्राज्यवाद विरोधी भावना को विकसित करने के लिए किया था।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सम्प्रदायवाद धर्म का एक वेहिकल के रूप में प्रयोग करता है। धर्म की मानवीय अंतर्वस्तु से उसका कोई लेना देना नहीं है।

अध्याय दो में यह दिखाया गया है कि लीग के द्वारा पाकिस्तान की माँग का अभिप्राय स्पष्टतः भूतकाल से सम्बन्ध विच्छेद था लेकिन यह ठीक ही कहा गया है कि पाकिस्तान लीग की राजनीति की तर्कता में विद्यमान था और यह लीग की पृथक्तावादी नीति का स्वाभाविक निष्कर्ष था। 1937 तक मुस्लिम लीग के द्वारा यह सब प्राप्त कर लिया गया था जो पृथक्तावादी प्रवृत्ति को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता था। लीग एक प्रतिक्रियावादी संस्था थी और उसके पास सामाजिक और

आर्थिक सुधार का कोई कार्यक्रम नहीं था, फिर वह मुस्लिम जनता पर किस प्रकार अपना प्रभाव बनाये रखती। “पृथक् मत, पृथक् निर्वाचक मण्डल, पृथक् प्रान्त और रक्षा कवच सबकी मांग की जा चुकी थी और पूरी हो चुकी थी। अगला तर्कसंगत कदम पृथक् राज्य की मांग करना था।” पाकिस्तान की मांग चाहे तार्किक दृष्टि से मूर्खतापूर्ण, भौगोलिक दृष्टि से दुर्बल, आर्थिक दृष्टि से विनाशकर और अल्पसंख्यक वर्गों की समस्या के समाधान के रूप में सर्वथा अस्वीकार्य ही क्यों न रही हो, मुस्लिम लीग को शक्तिशाली बनाये रखने में समर्थ थी।

साधारणतया सर मुहम्मद इकबाल को पाकिस्तान के विचार का जनक समझा जाता है। सन् 1930 की लीग के इलाहाबाद अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने घोषणा की थी कि “मुझे कम से कम उत्तर-पश्चिमी भारत के मुसलमानों का अन्तिम लक्ष्य एक पूर्ण उत्तर-पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का निर्माण प्रतीत होता है।” किन्तु इकबाल मुसलमानों के लिए एक प्रभुता सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य के निर्माण के पक्ष में नहीं थे। कूपलैण्ड के मतानुसार, “इकबाल सम्पूर्ण भारत के लिए एक ढीले संघ के पक्ष में थे जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के द्वारा कुछ विशेष विषयों के सम्बन्ध में ही शक्ति का प्रयोग किया जाना था।” 1930 में ही उन्होंने एडवर्ड थाम्पसन से अपनी बातचीत में कहा था कि ‘पाकिस्तान की योजना ब्रिटिश सरकार, हिन्दू जाति तथा मुस्लिम जाति के लिए घातक होगी।

इतना होते हुए भी कैम्ब्रिज के मुस्लिम छात्र इकबाल के विचारों से प्रभावित हुए। 1933 में रहमतअली ने पाकिस्तान की स्थापना की एक योजना बनायी जिसमें पंजाब, कश्मीर, सिन्ध, बिलोचस्तान और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त सम्मिलित किये जाने थे। लेकिन जब यह योजना गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने वाले लीग

के प्रतिनिधियों मि.जिन्ना और जफरुल्ला खां के समक्ष उपस्थित की गयी तो इन नेताओं ने योजना को 'काल्पनिक और अव्यावहारिक' बताया और इस प्रकार पाकिस्तान की योजना को उस समय तक कोई प्रोत्साहन नहीं मिला।

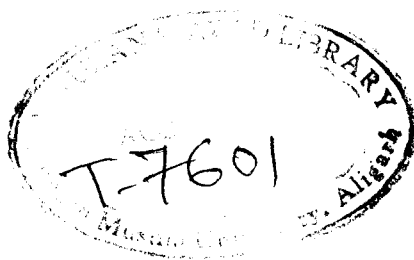
अध्याय तीन में उर्दू उपन्यासों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि विभाजन की मांग मुसलमानों के परजीवी वर्ग—जमींदार और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी—ने उठाई थी। इनके अपने स्वार्थ थे, जिसे इन लोगों ने धर्म का बाना पहनाकर पेश किया। अब्दुल्ला हुसैन ने अपने उपन्यास 'उदास नस्लें' में लिखा है। "रोशन आगा दो नजरियों के बीच बंटे हुए थे। खेतों में खुद कभी काम न करने के कारण उन्हें जमीन मात्र से कोई लगाव नहीं था। लेकिन इसकी मिल्कियत और इस कारण उससे जुड़े लोगों के प्रति उनकी निष्ठा थी। दूसरी ओर मुस्लिम लीग के मकसद मुसलमानों के लिए नये वतन पाकिस्तान के प्रति उनका समर्थन भरा नया नजरिया था।"

कुर्रतुल ऐन हैदर ने 'आग का दरिया' में विभाजन के कारण का विश्लेषण करते हुए लिखा है: "हिन्दुस्तानियत और इस्लाम एक मानी के अंदर आ नहीं सके, क्योंकि प्रथम में हिन्दुइज्म शामिल था और उसमें अंग्रेजों ने हिंदू सांप्रदायिक तत्वों के जरिए अलग हिंदू रिवाइवलिज्म का आंदोलन चला रखा था।... हिंदू बहुसंख्यकों के हाथों पिट जाने के भय की सायकालोजी का जिक्र पंडित नेहरू और सरदार पणिककर दोनों ने किया है। यह सवाल इतिहास का बहुत बड़ा अंग है कि यदि इस भय को दूर किया जा सकता तो आज हालात क्या होते?"

अध्याय चार में हिन्दी उपन्यासों में भारत विभाजन की पीड़ा की अभिव्यक्ति बहुत ही मर्मांतक रूप में हुई है। इस पीड़ा पर लिखने में लगभग पन्द्रह वर्ष लगे।

साठ के दशक में विभाजन पर लिखा गया। विभाजन की पीड़ा आज भी विद्यमान है। ' भारत विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखित... उपन्यासों में अभिव्यक्ति भारतीय मुसलमान की उलझन व भारत विभाजन की गुत्थी को न तो मुहम्मद अली जिन्ना के 'दो राष्ट्रों के सिद्धांत से सुलझाया जा सकता है और न ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में इसका हल ढुंढा जा सकता है। "अउरी हम त फिनहूँ जोलहे के जोलहा रह जाइब। का पाकिस्तान में मियां लोग जोलहन से रिस्ता नाता करे लगिहें ?" 'आधा गांव के हाजी साहब का यह सवाल और 'छाको की वापसी' के महमूद खलीफा का यह विश्वास कि "सैयद के पांव दबाने से हो सकतइ कि अल्लाह मियां खुस हो जथिन । हमरा भी जन्नत देयिनत अल्लाह मियां।" इस सदिच्छा से अनुत्तरित रह जाता है कि " मुसलमान मुसलमान भाई भाई होता है। इस्लाम ऊंच नीच को नहीं मानता ।" 'आधा गांव' के तन्नू (मेजर तनवीरुल हसन) का इस पशोपेश में होना कि ' क्या सचमुच हिंदुस्तानी मुसलमान इस जमीन का नहीं है। वे क्यों एक वतन की जरूरत महसूस कर रहे हैं और छाको का यह चीत्कार कि ' जेहल दे दे चाहे फांसी, हहू हम त छोड़ के न जैबई अपन घरवा' भारतीय मुसलमान की जिस पीड़ी को उजागर करता है उसे हिन्दू मुस्लिम एक रैखिकता के सरल नुस्खे से नहीं समझा जा सकता।"

अध्याय पाँच में हिंदी-उर्दू उपन्यासों के माध्यम से धर्मनिरपेक्ष, साम्प्रदायिक विचारधारा और इतिहास, धर्म, संस्कृति व भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।



मुहम्मद अली



“हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में भारत विभाजन”
भारतीय मुसलमानों के विशेष संदर्भ में

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की

पी०एच-डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2008

निर्देशक :

डा० भरत सिंह

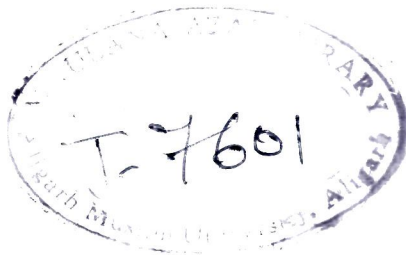
रीडर हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़-202002

शोधकर्ता :

मुहम्मद आरिफ

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़-202002

71601



05 JUN 2012



ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY,
ALIGARH-202002

Dr. Bharat Singh
Reader

Dated. 25/09/2008

Certificate

This is to certify that **Mr. Mohammad Arif** has worked on the topic *“Hindi-Urdu Upanyason mein Bharat Vibhajan: Bhartiya Musalmanon ke Vishesh Sandarbh Mein”* for his Ph.D. under my supervision. To the best of my knowledge, the work is result of his own endeavour.


(Dr. Bharat Singh)

THESIS



CHAIRMAN

DEPARTMENT OF HINDI
FACULTY OF ARTS
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY, ALIGARH-202 002

Telex : 564-230 AMU IN
Phones: Off. 2700920 } Ext.
2700921 } 1460
2700922 } 1461
Res. (0571) 2740041

CERTIFICATE

*This is to certify that **Mr. Mohammad Arif** has submitted his Ph.D. thesis on dated 25/09/08..... entitled "**Hindi Urdu Upainyason Mein Bharat Vibhajan Bhartiya Musalmanon Ke Vishesh Sandarbh Mein**" under the supervision of **Dr. Bharat Singh**.*

He has been a regular Research scholar for a period of two years from the date of his admission.

(Prof. P. K. Saxena)

आभार

आभारी हूँ अपने पिता स्वर्गीय श्री समी ख़ान जी का, जिन्होंने मुझे साहस व निर्भीकता से अपनी बात कहना सिखाया। साहित्य—संस्कृति में रुचि उत्पन्न की। वह मुझे अपने साथ रामलीला दिखाने व अन्य संस्कृतिक कार्यक्रमों में ले जाते थे। वे सामाजिक कार्यकर्ता थे। उन्होंने मुझे सिखाया कि मनुष्यता धर्म से ऊपर है। उनकी यादें मेरा सम्बल हैं।

आभारी हूँ अपनी माँ श्रीमती हसीमा बेगम का, जिन्होंने मुझे बचपन में न जाने कितने गीत सुनाये, मेरी हर जरूरत को पूरा किया।

आभारी हूँ अपने बड़े भाईयों, इ० अब्दुल हफीज ख़ान, श्री चमन ख़ान, श्री अमन ख़ान, इक़बाल ख़ान और अख़लाक ख़ान का जिन्होंने मुझे पिता जी की कमी नहीं खलने दी और मेरी हर जरूरत का ध्यान रखा।

आभारी हूँ छोटे भाई सद्दन ख़ान और इशरत ख़ान का जिन्होंने मुझे हर जिम्मेदारी से मुक्त रखा।

आभारी हूँ छोटी बहन गुलदाना का जिसने मुझे प्रोत्साहित किया।

आभारी हूँ अपनी पत्नी जहाँआरा का जिन्होंने मुझे काम जल्दी करने के लिए उत्साहित किया और उनके उलाहानों से ही मैं यह काम पूरा कर सका।

आभारी हूँ अपने शोध निर्देशक डॉ० भरत सिंह साहब का, आपने मुझे सत्य के प्रति निष्ठा, श्रम के प्रति ईमानदारी, अध्ययन के प्रति जागरुकता और तथ्य के प्रति प्रतिबद्धता सिखाई। सत्य और तथ्य का रास्ता कभी न छोड़ने की नेक सलाह दी। जिस पर चलने का प्रयास मैं अपने जीवन में करूंगा।

आभारी हूँ डॉ० खालिद बिन यूसुफ़, रीडर, संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम

विश्वविद्यालय, अलीगढ़ का। आपने मुझे छोटे भाई की तरह प्यार किया और मेरे स्थानीय अभिभावक की जिम्मेदारी निभाई।

आभारी हूँ अपने दोस्तों— डॉ० आलोक कुमार सिंह, अशलम ख़ान, मु० शोएब हनीफ अहमद ख़ान, इरशाद अहमद ख़ान उर्फ गाजी, शमशुल हसन, आफताब, डॉ० सैय्यद वसीम अहमद और डॉ० काशिफ का, इन लोगों ने परिवार की कमी को पूरा किया। हर दुख—सुख में मेरा साथ दिया।

आभारी हूँ पंकज मित्तल का, जिन्होंने बहुत कम समय में टंकण कार्य सम्पन्न किया।

मुहम्मद आरिफ
मुहम्मद आरिफ

अनुक्रम

प्रस्तावना	1
धर्म और साम्प्रदायिकता: एक ऐतिहासिक संदर्भ	
अध्याय: एक	40
औपनिवेशिक भारत में साम्प्रदायिकता के विभिन्न आयाम	
अध्याय: दो	70
भारत विभाजन और भारतीय मुसलमान	
अध्याय: तीन	110
उर्दू उपन्यासों में भारत विभाजन और भारतीय मुसलमान	
अध्याय: चार	134
हिंदी उपन्यासों में भारत विभाजन और भारतीय मुसलमान	
अध्याय: पाँच	149
धर्मनिरपेक्ष व साम्प्रदायिक विचारधारा	
इतिहास, धर्म, संस्कृति और भाषा	
संदर्भ ग्रंथ	190

धर्म और साम्प्रदायिकता के ऐतिहासिक संदर्भ

अपने मौजूदा शोषक रूप में धर्म का उदय वर्ग समाज के साथ हुआ। धर्म अधिरचना का सबसे अधिक गूढ़ एवं मजबूत अंग है। अधिरचना के अन्य अंगों उपांगों की भांति धर्म भी आधार को तब्दील करने में निर्णायक भूमिका नहीं निभाता; बल्कि सदैव आधार से व्युत्पादित, अनुशासित और व्यवस्थित होता रहता है। वर्ग समाज में धर्म यदि एक ओर शोषकों के हाथों शोषण का हथियार बनता है तो दूसरी ओर शोषित वर्ग की वेदना और विद्रोह को भी वाणी देता है। यही कारण है कि मध्यकाल में उठे सारे जन संघर्षों को अन्ततः धार्मिक जामा पहनना ही पड़ा। इसी क्रम में नये धर्मों की सृष्टि और पुरानों का विनाश अथवा परिष्कार हुआ। अब आधार में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हो पाता और उत्पादन प्रक्रिया ज्यों की त्यों बनी रहती है तो एक दौर में जन संघर्षों का नेतृत्व करने वाले प्रगतिशील धर्म कालान्तर में उत्पीड़कों के रक्षा कवच बन जाते हैं बौद्ध, ईसाई और इस्लाम धर्मों के उद्भाव और विकास इसी प्रक्रिया को दर्शाते हैं।

उत्पादन पद्धति की संवाहक राजनीति धर्म को तय करती है। धर्म राजनीति को तय नहीं करता। धर्म उतना ही राजनीति के आगे पीछे जा सकता है, जितना कि उत्पादन – पद्धति उसे इजाजत देती है। धर्म की नकेल राजनीति के हाथ में है, किन्तु प्रतिक्रियावादी विचारक इसके ठीक उल्टा देखते हैं। उनके

यहां समाज भौतिक शक्तियों से संचालित नहीं होता ,विचारों से होता है। ये विचार पैगम्बरों, रसूलों और अवतारों में पैदा होते हैं, जिन्हें 'परम विचार'(ईश्वर) धरा-धाम पर परिवर्तन करने के लिए भेजता है। इन पैगम्बराके , रसूलां और अवतारों के विचार ही धर्म हैं, जो राजनीति तो क्या उत्पादन पद्धति तक को निर्धारित करते हैं। परन्तु इस भाववादी दृष्टिकोण की अब तक का मानव इतिहास पुष्टि नहीं करता।

राष्ट्रीयता और धर्म

राष्ट्र क्या है ? भूमि , जन और उसकी संस्कृति से राष्ट्र बनता है; भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता में बंधे अवाम यह महसूस करते हैं कि उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित समान हैं। साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की प्रतिक्रिया स्वरूप जिस उग्र हिंदू राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की शुरुआत हुई उसने राष्ट्रवाद की अवधारणा को धर्म से जोड़कर ऐसे विग्रह के बीज बोये जिसकी फसल भारत – पाक विभाजन के दौरान दस लाख लोगों की बलि देकर काटनी पड़ी। हिन्दू सांप्रदायिकता ने भारत को 'हिन्दू राष्ट्र' के रूप में प्रस्तुत किया। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान यह अवधारणा अचेतन रूप में प्रकट हुई थी, किन्तु जैसे – जैसे स्वाधीनता संग्राम की जटिलताएं बढ़ती गईं सचेतन रूप से सांप्रदायिक शक्तियों ने भारत को हिन्दू राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत किया और मुसलमानों को विदेशी बताकर राष्ट्र की मुख्य धारा से काटने का गहिर्त कृत्य कर डाला।

धर्म राष्ट्रीयता का आधार नहीं है, अगर धर्म राष्ट्रीयता का आधार होता तो यूरोप के सारे ईसाई देश एक राष्ट्र होते और एक ही ईसा के अनुयायी दो-दो विश्व युद्ध लड़कर करोड़ों व्यक्तियों की हत्या न करते। अगर धर्म ही राष्ट्रीयता

का आधार होता तो सारे मुस्लिम देश एक राष्ट्र होते और एक ही किताब के हामी, एक ही पैगम्बर के अनुयायी, एक ही खुदा के बन्दे पाकिस्तान और बंगलादेश एक दूसरे से अलग न होते और न ही पाकिस्तान की इस्लामी सेना अपने बंगाली भाईयों पर वह कहर बर्पाती जिसे देख और सुनकर हैवानों के भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अगर धर्म ही राष्ट्रीयता का आधार होते तो सारी दुनिया में चार ही प्रमुख राष्ट्रीयताएं होतीं – ईसाई, इस्लाम, बौद्ध और हिन्दू।

राष्ट्रवाद पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली की देन है। प्राक् पूंजीवादी व्यवस्थाओं में इस किस्म के राष्ट्रवाद के दर्शन नहीं होते, दास एवं सामंती व्यवस्थाओं में राष्ट्र का स्वरूप रोज बनता है और रोज बिगड़ता था। शोषित जनता उस दौर में वह भेड़ थी जिसे कोई सामंत मूँडने को तैयार रहता था। उसे तो भूखे और नंगे रहकर राजाओं को टैक्स देना था। सामंतवाद के निर्मम शोषण ने उसमें यह मानसिकता पैदा कर दी थी: कोउ नृप 'होय हमें का हानी, चेरी छांडि होहिं नहिं रानी'।

आज के युग में कट्टर राष्ट्रवाद फासिज्म को जन्म देता है। हिन्दुत्व की सांप्रदायिक शक्तियां हमें अतीत का भक्त बनाती हैं और शोषकों की महानता में आस्था पैदा करने की जी तोड़ कोशिशें करती हैं। जनता को अतीत में स्वर्ण युग नहीं मिलेगा, वह तो भविष्य में है, अतीत उन छुट्टल सामंती सांडों की कहानी है जिन्होंने दबी- कुचली जनता को लाखों बार दबाया और निचौड़ा है।

युद्धों के कारण धार्मिक नहीं

बहुधा, हिन्दु सांप्रदायिक, इतिहास लेखन इस्लाम पर यह आरोप लगाता है कि उसने धर्म के लिए युद्ध किये। यह सोच इतिहास और धर्म की अवैज्ञानिक समझ पर आधारित है। धर्म आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की उपज है।

आर्थिक आवश्यकताएं युद्धों को जन्म देती हैं, अधिरचना के वैचारिक अंग तो उसे औचित्य प्रदान करने हैं।

इस्लाम के उदय और उत्कर्ष के पीछे खानाबदोश-धुमकड़ अरबों के विशुद्ध सांसारिक एवं घोर आर्थिक स्वार्थ छिपे थे। एंगेल्स ने लिखा— 'इस्लाम एक ऐसा धर्म है जो पूर्व के देशों के रहने वालों के लिए, खासतौर से अरबों के लिए बनाया गया है, अर्थात् एक तरफ तो व्यापार और उद्योग में लगे शहरी लोगों के लिए वह बनाया गया है। और, दूसरी तरफ, खानाबदोश धुमकड़ों के लिए... शहर के लोग पैसे वाले और ऐय्याश हो जाते हैं और 'कानून' को मानने में ढिलाई दिखलाने लगते हैं। रेगिस्तानों में घूमने वाले अरब गरीब और इसलिए सख्त आचार व्यवहार के मानने वाले होते हैं, इस धन सम्प्रदा और इन ऐय्यासशियों की ओर वे हसद और लालच की दृष्टि से देखने लगते हैं। फिर वे किसी पैगम्बर, किसी मेंहदी (नबी, इस्लाम का नेता) के नेतृत्व में एक और अधर्मियों को सजा देते हैं और रीति-रस्मों तथा सच्चे मजहब की फिर से स्थापन कर देते हैं और जिन्होंने धर्म को छोड़ दिया है, उनसे उनकी धन संपदा खुद छीन लेते हैं। और लगभग सौ वर्ष बाद वे भी उसी स्थिति में पहुंच जाते हैं जिसमें वे धर्महीन लोग थे। मजहब की फिर से सफाई करने की जरूरत पैदा हो जाती है। एक नये मेंहदी का उदय होता है और एक बार फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है। अन्त में एंगेल्स इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'ये तमाम तहरीकें मजहब का बाना पहने रहती हैं, किन्तु उनके स्त्रोत आर्थिक परिस्थितियों को हाथ लगाये बिना वे अछूता ही छोड़ देते हैं। यहां यह ध्यान रहे कि इस्लाम के विजेताओं ने किसी देश की उत्पादन प्रक्रिया को नहीं बदला, बल्कि उसके अनुसार अपने मजहबी रुझानों को दुरुस्त किया।

इस्लाम धर्मावलंबी जब भारत के शासक बने तो उनके सामने ऐसी स्थिति

दरपेश हुई जिनका हल वे अपनी पवित्र धर्म-पुस्तक के आधार पर निकालने में असमर्थ थे। लिहाजा उन्हें अपने मजहबी जजबातो को दबाकर उन चीजों को स्वीकार करना पड़ा जो उस दौर की आर्थिक व्यवस्था की अंग थी। उदाहरण के लिए गोकशी। कृषि प्रधान देश के लिए गाय सीधी उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ी है, उधर गो – आमिष मजहबी लिहाज से मुकद्दस खुराक भी, किन्तु मुसलमान सुल्तानों ने बड़ी कड़ाई से गो हत्या पर प्रतिबन्ध लगाए। अकबर ने गो हत्या के अपराध में मृत्यु दंड की व्यवस्था की। जहांगीर ने बृहस्पति और इतवार के दिन प्रत्येक जीव हत्या पर रोक लगाई। शाहजहां ने देहातों में गो हत्या प्रतिबन्ध को सख्ती से लागू किया था। मुस्लिम शासक को धर्मानुप्रेरित नहीं कहा जा सकता। यह सच है कि वे विजेता थे, उनका विजिगीषु अहंकार उन्हें अपने धर्म को श्रेष्ठ मानने का औचित्य प्रदान करता था और उन्हें इसका पुरा हक भी था। भारत के पराजित हिन्दु धर्माविलंबी शासक, विजेताओं को विधर्मी और म्लेच्छ कहकर जनता की सहानुभूति जुटाना चाहते थे और जनता के धार्मिक उन्माद को भड़का कर पुनः सत्तारूढ़ होने का प्रयास भी करते थे। इसके लिए झूठ फरेब और अफवाहों का जी खोलकर आश्रय लिया जाता था। मुस्लिम विजेताओं की तस्वीर काले कोलतार से गढ़ी जाती थी। उन्हें गो-हत्यारा, मुर्तिभंजक, अत्याचारी और जबरिया धर्म परिवर्तन कराने वाले हैवान कहा जाता था। हिंदू शासक स्वयं को हिंदुत्व का रक्षक घोषित करके अपना राज्य पाना चाहते थे। यह भी सच है कि विजेता अपना आंतक कायम करने के लिए गोकशी भी करते थे और यदाकदा मूर्ति भंजन भी। उन्हें अपनी न्यून संख्या का अहसास बराबर बना रहता था। इसके लिए वे धर्म परिवर्तन का भी सहारा लेते थे। किन्तु यह कहना कि धर्म परिवर्तन तलवार के जोर से हुआ, ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना करना है। यह संभव है, मुल्लाओं की वजह से एकाध घटना जबरियां धर्म परिवर्तन की हुई

होगी। मुल्ला ऐसी हरकतें किया करते थे किन्तु यह जरूरी नहीं कि उच्च सत्ता से उन्हें शह मिलती ही हो। एक बार अलाउद्दीन खिलजी को मुल्ला काजी मुगीस ने सलाह दी थी कि सुल्तान हिन्दू चौधरियों और मुकद्दमों को इस्लाम कबूल करने के लिए बाध्य करें, किन्तु अलाउद्दीन खिलजी ने मुल्ला को टाल दिया था कि अगर उन लोगों ने लगान जमा करने के काम में बेईमानी की तो उन्हें सजा दी जायेगी। कुछ सुल्तान को हिकारत की दृष्टि से देखते थे। उनमें से प्रमुख नाम हैं— मुहम्मद तुगलक और जहांगीर का मुहम्मद तुलगाक पर तो समकालीन लेखकों ने मुल्लाओं और सैयदों के कत्ल का आरोप लगाया है। तुगलक को हिन्दू जोगियों की सोहबत में बहुत आनन्द आता था। जहांगीर से तो मुल्ला इतने डरते थे कि उसे देखते ही छिप जाते थे।

धर्म परिवर्तन कराने में इस्लाम का उतना हाथ नहीं है जितना कि प्रचारित किया जाता है। धर्म परिवर्तन का मुख्य कारण था हिन्दु धर्म की निष्कृष्टतम कोटि की वर्ण व्यवस्था। गरीब जनता ने सामाजिक समानता प्राप्त करने के लिए इस्लाम को ग्रहण किया था, और उच्च वर्ग इसलिए धर्मांतरित हुए कि वे शासन में उच्च आसन पा सकेंगे।

देश में मुस्लिम शासन का कारण यह नहीं था कि शासकों का और ऊपरी स्तर के जागीदारों का धर्म इस्लाम था। यह कथन तथ्यों के विरुद्ध है। शुरू से लेकर आखिर तक सारी की सारी शासन व्यवस्था, गांवों के स्तर पर हिंदुओं के हाथों में थी और इन हिंदुओं की मदद के बगैर न तो यह 'मुस्लिम शासन' स्थापित हो सकता था, न आगे चल सकता था। यहां तक कि 'हिन्दू' और 'जमींदार' इन शब्दों को समकालीन इतिहासकार पर्यायवाची शब्दों की तरह प्रयोग करते हैं। शासक वर्ग इन मुस्लिम जागीरदारों और हिंदू जमींदारों का संयुक्त वर्ग था। हिन्दू सामंत और सरदार 'मुस्लिम शासन' में बाकायदा

हिस्सेदार थे और उच्च पदों पर असीन थे। 500 से अधिक मनसब वाले हिन्दुओं की संख्या अकबर के शासन काल में 22.5 प्रतिशत और शाहजहां के शासन काल में 22.4 प्रतिशत थी। औरंगजेब (जिसे कट्टर हिंदू विरोधी कहा जाता है) के शासन काल के प्रथम बीस वर्षों में यह संख्या 21.6 प्रतिशत और आखिरी बीस वर्षों में 31.9 प्रतिशत थी। शाहजहां के उत्तराधिकारियों में जब सत्ता संघर्ष छिड़ा तो एक हजार से ऊपर के मनसबदारों में से 21 औरंगजेब के साथ थे 24 दारा के साथ और दो शुजा के साथ।

सत्ता प्राप्त करने के संघर्ष को हिंदू सांप्रदायिकता धर्म युद्ध का नाम देती रही है। महाराणा प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह को 'हिन्दुत्व के रक्षक' के रूप में पेश किया जाता रहा है। इसके साथ ही यह घातक मान्यता और प्रतिष्ठित की गई है कि ये तीनों भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रतीक थे क्योंकि सबसे पहले 'विदेशियों' के खिलाफ अविराम संघर्ष इन्हीं लोगों ने चलाया। भारत की धर्म निरपेक्षता के अलमवरदार इन धारणाओं को दृढ़ता प्रदान करने वाले आधुनिक सांप्रदायिक उत्सवों में बकायदा भाग लेते हैं (प्रधानमंत्री ने महाराणा प्रताप पर हुए विशेष उत्सव का उद्घाटन करते हुए राणा प्रताप को आजादी के प्रथम योद्धा के रूप में याद किया।)

इतिहास की यह सांप्रदायिक समझ देश के विघटन का कारण बनी थी। और आज भी मुस्लिम अल्पसंख्यकों में भय का कारण बनी हुई है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई भी युद्ध धर्म युद्ध नहीं होता। सारे युद्ध आर्थिक और राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए होते हैं। शोषक वर्ग ने धर्म का प्रयोग अपनी सत्ता के लिए सदैव किया है। अगर हिंदू मुस्लिम शासकों के मध्य हुए युद्धों का कारण धर्म था तो हिंदू शासकों के हिंदू शासकों के साथ, मुस्लिमों के मुस्लिमों के साथ जो युद्ध हुए उन्हें किस मुंह से धार्मिक कहा जायेगा। हिंदू और

मुस्लिम शासक जब एक दूसरे पर आक्रमण करते थे तब भी धर्म का सहारा लेते थे। तैमूर ने तुगलकों पर जो आक्रमण किया उसका कारण उसने यह बताया कि वे सच्चे मुसलमान नहीं हैं। किन्तु बाबर ने जब इब्राहिम लोदी पर आक्रमण किया तो उसको इस बहाने की जरूरत भी न पड़ी और नहीं शेरशाह सूरी ने जब हुमायूँ को मार भगाया तो किसी भी दलील का सहारा लिया। हिन्दू शासक तो इस क्षेत्र में आद्वितीय थे। वे बिना कोई धार्मिक कारण बताये एक दूसरे को कुचल कर रख देते थे, गांव के गांव उजाड़ देते थे और सामूहिक हत्याएं करके 'क्षत्रिय' का व्युत्पत्तिपरक गुरु गौरव स्थान प्राप्त करते थे। यहां केवल एक ही उदाहरण काफी होगा महान अशोक का, जिसने अपने कलिंग युद्ध में एक लाख व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया इसके कई गुने युद्ध जनित कारणों से कालांतर में काल के गाल में समा गए और डेढ़ लाख निर्वासित कर दिए गए।

हल्दी घाटी का युद्ध हिंदू मुसलमानों के बीच नहीं था और न ही महाराणा प्रताप हिंदू जनता के हितों के लिए लड़े थे। वह युद्ध केंद्रीय सत्ता के खिलाफ प्रांतीय सत्ता का विद्रोह था। अकबर की ओर से सेना का नेतृत्व मान सिंह ने किया जिसमें साठ हजार मुगल और 40 हजार राजपूत सैनिक थे। राणा प्रताप की सेना में 40 हजार राजपूत थे और हाकिम खान सूर के नेतृत्व में पठानों की एक टुकड़ी थी। राणा की सेना में एक घुछसवार रेजीमेंट थी। जिसकी जालौर के पठान राजा ताज खान के हाथों में थी, राणा प्रताप का तोपची एक मुसलमान था जिसने अकबर की फौजों से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी।

शिवाजी का विद्रोह केंद्रीय सत्ता की आर्थिक नीतियों से उत्पन्न हुआ था। उसकी सेना में पठानों की बहुत बड़ी संख्या थी और जनता के पीड़ित मुसलमान तबके उसके नेतृत्व में संघबद्ध हुए थे।

गुरु गोविन्द सिंह औरंगजेब के जीते-जी केंद्रीय शासन की आर्थिक एवं

राजनीतिक नीतियों के खिलाफ लड़ते रहे । उसकी सेना में मुसलमान सैनिक थे । सैकड़ों मुसलमान सैनिकों ने औरंगजेब से लड़ते हुए अपने प्राणों की बाजी लगा दी । जब औरंगजेब के उत्तरधिकारियों में सत्ता संघर्ष चला तो गोविंदसिंह ने सफल दावेदार बहादुरशाह का साथ दिया । बहादुरशाह के शासन में उसका ओहदा 5000 जात और 5000 सवार वाले सामंत का था । वे बहादुरशाह के साथ दक्कन गए जहां उन्हें एक पठान नौकर ने विश्वासघात से मार डाला ।

जैसे-जैसे मुगलों की सत्ता क्षीण होती गई रियासतों में आन्दोलन बढ़ते गए एक । जाट, राजपुत, मराठा और सिक्ख विद्रोह उन आर्थिक संकटों की देन थे जो औरंगजेब की अव्यवहारिक नीतियों तथा पतनशील सामंती व्यवस्था से उत्पन्न हुए थे । 'काफी हद तक ये बगावतें किसानों पर मुगल राजस्व अधिकारियों के जुल्म का परिणाम थीं ।' उन्होंने दिखला दिया कि किसान, जमींदारों सामंतों और राज्य के सामंती जुल्म के कारण काफी असंतुष्ट है । ³ भूराजस्व अकबर के जमाने से लगातार बढ़ता गया । सामंतों के तबादले एक जागीर से दूसरी जागीर में होते रहते थे । जिसका परिणाम यह होता था कि सामंत अपनी जागीरदारों से थोड़े ही समय में यथा संभव आमदनी प्राप्त करने की कोशिश करते थे । उन्होंने किसानों से भारी रकमों की मांग की और सरकारी नियमों की अवज्ञा उन पर भीषण अत्याचार किए । औरंगजेब की मृत्यु के बाद राजस्व की इजारा प्रथा कायम की गई, जिसके अंतर्गत सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को भूराजस्व के ठेकेदारों और ताल्लुकेदारों का एक नया वर्ग बन गया और किसानों की लूट-खसोट की कोई सीमा नहीं रही । इसी की प्रतिक्रिया थे ये विद्रोह, जिनका नेतृत्व अक्सर जमींदारों ने किया । किसानों ने डाकुओं और दुःसाहसियों के जत्थे बनाकर फिरना शुरू कर दिया और मुगल प्रशासन की कानून और व्यवस्था की जड़ें खोद डाली ।

चूंकि इन विद्रोहों का नेतृत्व अधिकांशतः हिन्दुओं द्वारा किया गया । इसलिए विद्रोह के नायकों ने ज्यादा से ज्यादा जनता को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विद्रोहों को धार्मिक जामा पहनाने की कोशिश की परन्तु उनके आचारण इसके विपरीत थे । 'धार्मिक एकजुटता की अपेक्षा सत्ता और लूट खसोट का महत्व उनके दिमाग में अधिक था । वे बहुधा हिन्दुओं से लड़ने और उन्हें लूटने में उतने ही निर्दयी होते थे जितना मुसलमानों के प्रति, वस्तुतः उस समय न तो हिन्दु समान समुदाय के रूप में थे, न मुसलमान ही । दोनों धार्मिक समूहों के उच्चवर्ग ही शासक वर्ग में शामिल थे । किसान और दस्तकार वे हिन्दु हो या मुसलमान , समाज के विशेषधिकार हीन बहुसंख्यक लोगों में आते थे । कभी-कभी हिन्दू और मुसलमान सामंत और सरदार अपने राजनैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए धर्म प्रचार को हथियार या साधन बनाते थे । मगर इससे भी अधिक बार वे सहधर्मियों के खिलाफ सत्ता, इलाके या धन प्राप्त करने के लिए परम्पर गठजोड़ करते थे' । ⁴

ऐसे गठजोड़ों के अनेकों उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है । राणा सांगा की विधवा रानी कर्मवती ने अपने दो पुत्रों, उदयसिंह और विक्रमसिंह को चित्तौड़ का उत्तराधिकारी बनाने के लिए बाबर के साथ गुप्त रूप से संपर्क स्थापित किया था । मुगल बादशाह को बयाना के बदले रणथंभौर और अन्य बहुमूल्य उपहार देने का बचन दिया । ⁵ बाबर की मृत्यु के बाद रानी ने अपने विरोधियों के विरुद्ध सहायता की याचना करते हुए अपना दूत हुमायूं के पास भेजा । दूसरी ओर राणा सांगा के भतीजे नरसिंहदेव तथा अन्य कई प्रमुख जागीरदारों ने गुजरात के बहादुरशाह को चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया । रानी द्वारा हुमायूं के पास भेजी गई राखी की प्रसिद्ध घटना किसी ऊँचे आदर्श का प्रतीक नहीं, चरम स्वार्थपरता का प्रमाण थी । औरंगजेब के समय तीस वर्ष तक चलने

वाले मारवाड़ मुक्ति संग्राम का वही अन्त हुआ जो अब तक अन्य राजपूत युद्धों का हुआ था—शाही सत्ता के साथ समझौता । पराक्रमी दुर्गादास ने राजपूतों की पराजय के बाद अपने को मुगल मनसबदारों की लाइन में खड़ा पाकर अत्यधिक सम्मान का अनुभव किया और अजीतसिंह, जिनके उत्तराधिकार के लिए इतना संघर्ष चला था, औरंगजेब को पत्र लिखकर आर्थिक सहायता की भीख मांग रहे थे। उन्होंने बादशाह से अपनी रियासत बापस देने की भी कई बार प्रार्थना की। व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने वंश का सम्मान और धर्म की लाज जैसी बातें अर्थहीन थीं। औरंगजेब की मृत्यु के बाद विद्रोही अजीत सिंह मुगलों के ताबेदार बनकर गौरवान्वित हुए।⁶ गर्हित आर्थिक स्वार्थों के समक्ष धर्म की बातें व्यर्थ थीं। बंगाल के संस्थापक नबाबों में से एक मुर्शिद कुलीखां के खिलाफ जो विद्रोह हुए उनमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों फिरकों के जमींदारों का हाथ था। पहला विद्रोह सीताराम राय, उदयनारायन और गुलाम मुहम्मद ने किया। दूसरा शुजात खां ने और आखिरी नजात खां ने अवध के नबाव सफ़दर जंग ने जब बंगाल पठानों के खिलाफ मुहिम छेड़ी तो उसके लिए उसने मराठों और जाटों का सैनिक समर्थन प्राप्त किया। इसके लिए उसे मराठों को प्रतिदिन पच्चीस हजार औं जाटों को पन्द्रह हजार रुपये देने पड़े, मराठों ने घोर अर्थ परस्ती का परिचय दिया। पैसों के लिए उनकी फौज कहीं भी और किसी के भी खिलाफ लड़ सकती थी।

हिन्दू और मुसलमान फिरकों के सामंत, सरदार और जमींदार आम जनता पर बिना धर्म का कोई ख्याल किये निर्मम जुल्म ढाते और उनका शोषण करते थे। महाराष्ट्र और राजपूताना के हिन्दू किसानों को भूराजस्व की उतनी ही ऊंची रकम देनी पड़ती थी जितनी आगरा, बंगाल या अवध के हिन्दू मुसलमान किसानों को। विद्रोह कुछ समय बाद लूट करने तक सीमित हो जाते थे। मसलन जाट-विद्रोह (जो मूलतः कृषक विद्रोह था) का स्वरूप जिसका नेतृत्व जाट

जमींदारों के हाथ में था; कुछ समय बाद परिवर्तित हो गया। उन्होंने सबको लूटा चाहे कोई गरीब या अमीर, जागीरदार हो या किसान, हिन्दू हो या मुसलमान। मराठों ने मुगलों से भी ज्यादा राजस्व वसूल करने में अपनी निर्दयता का परिचय दिया। आधा कृषि उत्पाद राजस्व के रूप में वसूल करना उनके यहां उत्तम बात थी। वसूल करने का तरीका ठेठ मराठी था। बाजीराय द्वितीय के जमाने में सूखा पड़ा हो या अकाल, अगर किसान लोग राजा द्वारा चाही गई धनराशि भेंट नहीं कर पाये तो कड़ाही में से उबलता हुआ तेल उनके बच्चों पर डाल दिया जाता था। उनकी झुकी हुई कमर पर कोड़ों की मार पड़ती थी और दमघोंट देने वाली धूनी में उनका सिर दे दिया जाता था उनकी नाभि और कानों में बारूद के विस्फोट किये जाते थे।⁷

मध्यकाल में साम्प्रदायिक सदभावना और सांस्कृतिक एकता

मुस्लिम शासित मध्यकाल में साम्प्रदायिक सदभावना सामंती उच्च वर्ग स्वार्थनुप्रेरित धार्मिक विद्वेष के बाबजूद बनी रही। 1857 से पहले कोई साम्प्रदायिक झगड़ा दृष्टिगोचर नहीं होता। मुस्लिम शासकों के दरबारों में उत्तरोत्तर हिन्दु अधिकारियों की ही पकड़ थी। शेरशाह सूरी के शासन से साम्प्रदायिक एकता की जड़े मजबूत होनी शुरू हुईं। मुस्लिम शासकों ने अपनी जिम्मेदारियों को गम्भीरता से लेना शुरू किया। शेरशाह सूरी ने एक फरमान जारी करके ऐलान किया था कि हिन्दुओं के धार्मिक स्थलों की रक्षा सरकार का फर्ज है, जो इसका उल्लंघन करेगा उसे कठोर दंड दिया जायेगा। अकबर से लेकर शाहजहां तक के शासन को अगर धर्म निरपेक्ष कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। औरंगजेब के कठमुल्लेपन से उसको जरूर आघात लगा था किन्तु यह उल्लेखनीय है कि उसके दरबार में हिन्दु मनसबदारों की संख्या अन्य शासकों की अपेक्षा

सबसे अधिक थी। उसे मुसलमानों पर विश्वास नहीं था, उसका अंगरक्षक हिन्दु था वह मुसलमान के हाथ का बनाया हुआ खाना नहीं खाता था। उसका रसोइया एक ब्राह्मण था। बहादुरशाह (1707–1712) के शासन में हिन्दू मनसबदारों की संख्या और बढ़ी। गुरु गोविन्द सिंह उसके दरबार में पांच हजारी मनसबादार थे। आमेर के जयसिंह और मारवाड़ के अजीतसिंह के रूतवे औरंगजेब के शासन काल से ही उत्तरोत्तर बढ़ते गये। औरंगजेब के पोते शदारशाह ने आमेर के राजा जयसिंह को मिर्जा राजा सवाई की पदवी प्रदान की और मावला का सूबेदार बना दिया मारवाड़ के अजीतसिंह को महाराजा की पदवी दी गई और गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया। चूड़ामान जाट और छत्रसाल बुदेला के साथ संधियां की गईं। फर्रुखशियर और सैयद बंधुओं के शासन काल में यही नीति अपनाई गई। केन्द्रीय सत्ता के कमजोर हो जाने पर मुगलों तथा गैर मुगलों की प्रांतीय सत्ताओं ने भी उसी नीति का अनुसरण किया और धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया, हिन्दू उच्च पदों पर बने रहे। हैदराबाद के पहले नावाब निजाम उल मुल्क आसफ जाह का दीवान पूरनचन्द नाम का हिन्दू था। अवध के नवाब सफदर जंग के दरबार में महाराजा नवाबराय उच्च पद पर थे। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के सब बड़े अधिकारी—मनिक चन्द, जगत सेठ, राजदुलर्भ मीर मदन ओर मोहनलाल—हिन्दू थे। (यह तथ्य अपनी जगह पर है कि नवाब से विश्वासघात करने वाले और उसका अंत तक साथ देने वाले हिन्दू ओर मुसलमान दोनों ही थे) गैर मुगल शासकों में टीपू सुल्लतान का नाम प्रमुख है। यह अपने धार्मिक विचारों में रूढ़िवादी होते हुए भी सहिष्णु था, श्रंगेरी मन्दिर को जब मराठा घुडसवारों ने 1791 में लूट लिया तो सुल्लतान ने मन्दिर की देवी शारदा की मुर्ति बनाने के लिये धन दिया। उसने अन्य कई मन्दिरों को नियमित रूप से उपहार दिए। श्री रंगनाथ का मशहूर मन्दिर उसके महल से केवल सौ गज की दूरी पर

था।

धार्मिक सहिष्णुता गैर मुस्लिम शासकों में भी थी, जिनमें से सरदार रणजीत सिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसकी सेना में गोरखा, बिहारी, उड़िया, डोगरा, पंजाबी और मुसलमान सैनिक थे। उसका सबसे प्रमुख और विश्वास पात्र मंत्री फकीर अजीजउद्दीन था, और वित्तमंत्री दीवान दीनानाथ। हर धर्म के आलिमों का वह स्वागत करता था। अपने सिंहासन से उतर मुसलमान फकीरों के पैरों की धूल अपनी लम्बी सफेद दाढ़ी से रगड़ता था। 18 वीं शताब्दी में साम्प्रदायिक सद्भावना के बारे में डा० विपिनचन्द्र लिखते हैं—“हिन्दुओं और मुसलमानों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध अठारहवीं शताब्दी के जीवन की एक बड़ी विशेषता थी। यद्यपि तत्कालीन सामंत और सरदार आपस में अनवरत लड़ते रहे, उनकी लड़ाइयां और उनके गठजोड़ विरले ही धर्म के भेदभाव पर आधारित थे। दूसरे शब्दों में उनकी राजनीति मूलतः धर्म निपेक्ष थी। असल में देश के अन्दर शायद ही साम्प्रदायिक कटुता या धार्मिक असहिष्णुता थी। छोटे बड़े सभी लोग एक दूसरे के धर्म की इज्जत करते थे और देश में सहिष्णुता यहां तक कि मेल जोल की भावना व्याप्त थी। हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध भाई चारे के थे। यह विशेषकर गांवों और शहरों की आम जनता के लिए सही था, जो धर्म के भेदभाव का ख्याल किए बिना एक दूसरे के सुख-दुःख में पूरी तरह हिस्सा लेती थी।^१ सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में जनता के बीच सौहार्द और भ्रातृत्व की भावना थी। एक मिश्रित हिन्दु मुस्लिम संस्कृति विकसित होती गई थी। हिन्दू साहित्यकार फारसी में और मुसलमान साहित्यकार हिन्दी, बंगाली तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में अपनी रचनायें लिखते थे। मुस्लिम साहित्यकारों के काव्य कथ्य हिन्दुओं के सामाजिक जीवन और धार्मिक देवी देवता थे।

धार्मिक क्षेत्र में भक्ति तथा सूफी आन्दोलन हिन्दू मुस्लिम जनता की

एकता के द्योतक थे, बड़ी संख्या में हिन्दू लोग मुस्लिम सिद्धों की पूजा करते थे और अनेक मुसलमान हिन्दू देवताओं और संतों के प्रति श्रद्धाभाव रखते थे। मुसलमान शासक सांमत और जन साधारण खुशी से हिन्दू त्यौहारों—होली, दिवाली और दुर्गा पूजा में भाग लेते थे और हिन्दू लोग मुहर्रम के जुलूसों में शिरकत करते थे। यहां यह भी तथ्य काबिलेगौर है— हिन्दू और मुस्लिम उच्च वर्गों के जीवन के तौर तरीके जितने समान थे उतने हिन्दू उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग के नहीं थे। इसी तरह क्षेत्र या इलाके अलगाव के मुद्दे बनते थे। एक क्षेत्र के लोगों के बीच धर्म भिन्न होने पर भी जितनी सांस्कृतिक एकता थी उतनी अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले एक धर्म के लोगों के बीच नहीं थीं। गांवों में रहने वाले लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का ढर्रा शहरी लोगों से अलग था।⁹

1857 का विद्रोह और हिन्दू-मुस्लिम एकता के नये कीर्तिमान

1857 का विद्रोह कंपनी राज्य के निर्मय शोषण का परिणाम था। इस विद्रोह ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के अभिनव कीर्तिमान स्थापित किए हिन्दू-मुस्लिम निहत्थी आम जनता कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेजों की हथियारबन्द फौजों से लगातार दो साल तक जूझती रही। इस विद्रोह ने साबित कर दिया कि मुसलमानों के उच्च वर्ग और साधारण जन इस देश की मिट्टी से कितना असीम प्यार करते हैं। बहादुरशाह जफर और नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हजरत महल तथा तात्या टोपे और फैजाबाद का मौलवी अहमद उल्ला इस समर में जूझ रहे। एक ओर रानी झांसी के नेतृत्व में पठान सैनिक लड़ रहे थे, उनकी जीवन भर की सखी एक मुसलमान लड़की छाया की तरह रानी की सुरक्षा कर रही थी जो रानी के साथ ही शहीद हुई, तो दूसरी ओर, बेगम हजरत महल के

नेतृत्व में समूची हिन्दू सेना अंग्रेजों से जूझ रही थी, इस जन विद्रोह में एक अभूतपूर्व घटना देखने में आई। वह घटना थी— बेगम हजरत महल के नेतृत्व में अवध की अनेक वीरंगनाओं का हथियार बांधकर मर्दाने भेष में लड़ना हरम की रक्षक हब्शिन बांदियां भी लड़ीं जिनके बारे में गार्डन एलेक्जेंडर ने लिखा— ‘वह जंगली बिल्लियों की तरह लड़ रही थीं और उनकी मृत्यु हो जाने से पहले यह पता ही न चला कि वे औरतें थीं।’¹⁰ अमृतलाल नागर ‘गदर के फूल’ में लिखते हैं— “सिकन्दर बाग में पीपल की वृक्ष से एक स्त्री ने अनेक गोरों को मार गिराया और अन्त में स्वयं गोली से ही मरी। लखनऊ के पतन के बाद एक जर-जर बुढ़िया लोहे के पुल के पास चीथड़े बटोरते नजर आया करती थी। कुछ दिनों बाद वह मरी पाई गई। जांच होने पर पता लगा की वह बारूद से कोई सुरंग उड़ाने आई थी। पलीता अधजला हाथ में ही रह गया और वह किसी कारणवश स्वयं ही मृत्युलोक से उठ गई। बेगम आलिया ने भी रानी लक्ष्मीबाई के समान स्त्रियों का सैनिक संगठन बनाया था, महलों की बांदियां उनकी निगरानी में कवायद इत्यादि करती थीं और उनकी शर्गिद कहलाती थीं, स्त्री जासूसों का अच्छा संगठन भी उसके द्वारा किया गया था।”¹¹

जो लोग भारतीय जनता की धर्मांधता को कोसते हुए नजर आते हैं उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस विद्रोह का कारण इन्फील्ड रायफलों के चर्बी भरे कारतूसों का प्रयोग बताया जाता है लेकिन जब हिन्दू-मुस्लिम विद्रोहियों को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा तो धार्मिक रूढ़िवादिता सामने नहीं आई। बताया जाता है गदर के दौर में जन सैनिक घर से झोले में रोटी डालकर ले जाते थे और मुंह से बर्ची वाला कारतूस काटकर अंग्रेजों को मारते थे।¹²

हिन्दू राष्ट्र के पैरोकार जो कहते नहीं अघाते कि हिन्दू होना देश भक्त होना है उन्हें इतिहास में झांककर यह देख लेना चाहिए कि जब समूचे हिन्दुस्तान

की हिन्दू-मुस्लिम जनता प्राण लेवा संघर्ष में जूझ रही थी, एकाध को छोड़कर समूचे मुस्लिम सामंत अंग्रेजों से लड़ रहे थे, ठीक उसी वक्त हिन्दु सामंतों का अधिकांश अंग्रेजों के जूते चाट रहा था। इतिहास बताता है अगर ग्वालियर के सिंधिया, इंदौर के होल्कर, जोधपुर के राजपूत, पटियाला-नाभा और जींद के सिक्ख, कश्मीर के डोगरा और नेपाल के गोरखा शासक तथा कलकत्ता, बंबई के रक्तजीवी बनिए; अंग्रेजों की मदद न करते तो इस मुल्क में 1857 के बाद अंग्रेजों का नाम लेवा और पानी देवा भी नहीं मिलता।

कुछ लोगों की दृष्टि में विद्रोह का चरित्र सामंती होने के कारण उसे खुशामदीद कहना अनुचित है— क्योंकि विद्रोह के नेता वे सामंत थे जो अपने खोए हुए राज्यों को वापस पाना चाहते थे। यह सत्य होते हुए भी विद्रोह के सामंती चरित्र को बहुत अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं है। सैनिक और जनता एक भिन्न प्रकार का नेतृत्व धीरे धीरे विकसित कर रही थी विद्रोह को सफल बनाने का प्रयास उन्हें संगठन के नये रूप विकसित करने के लिए मजबूर कर रहा था। बेंजामिन डिजरेली ने उस समय ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दी कि अगर उसने विद्रोह का समय पर दमन नहीं किया तो अंग्रेज मंच पर अपने खिलाफ भारत के राजाओं का नहीं बल्कि अन्य पात्रों को पाएंगे।¹³ कंपनी ने रोमन साम्राज्य की सुप्रसिद्ध कूटनीति 'लड़ाओं और राज्य करो' का आश्रय लेकर भारत में अपने साम्राज्य की बुनियाद डाली। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश कूटनीति में नया मोड़ आया। अब नारा बन गया। 'बांटो और राज्य करो।' इस नारे की जड़ में हिन्दू-मुस्लिम जनता की एकता को तोड़ना था, जिसका मुकाबला उन्हें 1857 में करना पड़ा। क्योंकि अंग्रेजों ने विद्रोह के दौरान जो हिन्दू-मुस्लिम एकता देखी वह उनके लिए घोर चिंता का विषय बन गई। 'वे इस एकता को तोड़ने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे जिससे उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन को

कमजोर बनाया जा सके वस्तुतः ऐसा करने के लिए उन्होंने कोई भी मौका हाथ से नहीं निकलने दिया। विद्रोह के तुरंत बाद उन्होंने मुसलमानों को सताया। बड़े पैमाने पर उनकी जमीन जायदादें छीन ली और हिन्दुओं को अपना प्रिय पात्र घोषित कर दिया।¹⁴ मुसलमानों का भयानक दमन हुआ। अकेले दिल्ली शहर में ही 27000 मुसलमानों को फांसी पर लटका दिया गया था। 1857 के बाद जब हिन्दू एक चुनौती के रूप में उभरना शुरू हुए तो अंग्रेजों ने मुस्लिम उच्चवर्ग पर अपना बरदहस्त रख दिया और राष्ट्रीय आन्दोलन में साम्प्रदायिकता के बीज बो डाले। 'अंग्रेजों का शासन कायम होने से पहले भारत में उस तरह के हिन्दू-मुस्लिम झगड़े कभी नहीं दिखाया दिये जैसे झगड़े अंग्रेजी शासनकाल में और खासतौर से इसके अंतिम दिनों में देखने को मिले। किसी एक रियासत के साथ किसी दूसरी रियासत का संघर्ष भी हुआ और कभी-कभी यह देखने में आया कि एक रियासत का शासक हिन्दू है और दूसरी का मुसलमान। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि इन संघर्षों ने हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रूप लिया हों।'¹⁵

अंग्रेजों ने जानबूझकर साम्प्रदायिकता के विष वृक्ष को पाला पोसा था। 1821 में ही एक अंग्रेज अफसर ने मई 1821 के 'ऐशियटिक रिव्यू' के अंक में कानांटिकस के नाम से लिखते हुए कहा था— 'राजनीतिक, नागरिक अथवा सैनिक हर क्षेत्र में हमारे भारतीय प्रशासन का मल वाक्य फूट डालो और राज्य करो होना चाहियें।' मुरादाबाद के कमांडेंट लेफ्टीनेंट कर्नल कोक ने 19 वीं सदी के मध्य में इस सिद्धांत की नींव डाल दी—'हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि हम पूरी ताकत के साथ विभिन्न धर्मों और जातियों के बीच मौजूदा भेदभाव बना रहने दें। हमें यह भेदभाव समाप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। फूट डालो और राज करो ही भारतीय सरकार का सिद्धांत होना चाहिए।' ¹⁶

साम्राज्यवादी इतिहास लेखन और उसकी साम्प्रदायिक प्रतिक्रियाएं

भारतीय इतिहास का अध्ययन ब्रिटिश साम्राज्य की भौतिक आवश्यकता थी। क्योंकि 1857-59 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासकों ने महसूस किया कि यह विद्रोह भारतीय धर्म, रीति-रिवाजों और इतिहास से उनकी अनभिज्ञता के कारण हुआ। उन्हें यह भी लगा कि जब तक मिशनरियों को भारतीय सामाजिक ढांचे की कमजोरियों का पता नहीं चलेगा तब तक यहां के लोगों के मन में ईसाई धर्म के प्रति और उसके माध्यम से साम्राज्य के प्रति श्रद्धा नहीं जगाई जा सकती।¹⁷ मैक्समूलर ने यह अभिमत प्रकट किया कि 'ईसाई धर्म प्रचारकों के लिए धर्मग्रंथों का सही ज्ञान प्राप्त करना उतना ही अनिवार्य है जितना कि किसी सेनापति के लिए शत्रु देश की जानकारी हासिल करना।'¹⁸

भारतीय इतिहास विशारद साम्राज्यवादी इतिहासकारों के दो शिविर थे। पहले शिविर का नेतृत्व मैक्समूलर और ब्लूम फील्ड करते थे। जो भारतीय आध्यात्मिकता से अत्यंत प्रभावित थे और भारत की प्रतिक्रियावादी चिंतन प्रणाली का समर्थन करते थे। मैक्समूलर ने भारतीय आध्यात्मवाद की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि 'भारत दार्शनिकों का देश है और भारतीय मनीषियों में राजनीतिक या भौतिक चिंतन का अभाव है तथा भारतीयों में कभी भी राष्ट्रीयता की भावना नहीं रही।'¹⁹ पश्चिम भौतिकता का प्रतिनिधित्व करता है और पूरब आध्यात्मिकता का। अतः पूरब को भौतिक क्षेत्र में पश्चिम के नेतृत्व की जरूरत है और पश्चिम को अध्यात्म के क्षेत्र में पूरब के नेतृत्व की। मैक्समूलर और उनके अनुयाइयों के भारत भक्त होने का मुख्य कारण यह था कि वे पश्चिम के पूंजीवादी समाज की अति भौतिकवादी जीवन पद्धति से क्षुब्ध थे, क्योंकि पूंजीवादी के फलस्वरूप पुराना पारिवारिक जीवन टूटने लगा था और स्त्रियों पर पुरुषों के अधिपत्य का बंधन शिथिल पड़ गया था। सम्भवतः पश्चिम के भौतिकवादी समाज

में संतुलन कायम करने की भावना से प्राचीन भारतीय आदर्श की दुहाई दी जाने लगी। मैक्समूलर ने अपनी एक किताब का शीर्षक रखा – भारत हमें क्या सिखा सकता है।' लगभग इसी समय एक फ्रेंच लेखिका ने अपनी पुस्तक – 'विमेन इन एशिएंट इंडिया' में लिखा– हम लोग (अर्थात् यूरोपियन) भारत के प्राणप्रद एवं उदार स्त्रोतों से अनुप्रेरणा लेकर अपने को नवोद्भासित करें, जहां के समाज में कर्तव्य भावना सब प्रकार की प्रेम भावना से ऊपर रहती है, पारिवारिक जीवन के प्रति सम्मान भाव रहता है और ये सभी मिलकर मानो ईसाइयत की समां बांध देते हैं।²⁰ एक भारतीय विद्या विशारद डच विद्वान जी० एच० मीज ने अपनी 'रिलीजन एण्ड सोसाइटी' नामक पुस्तक में भारतीय वर्ण व्यवस्था की ही प्रशंसा करते हुए लिखा: 'वर्ण व्यवस्था का आदर्श सार्वभौम एवं शाश्वत मूल्य का है और किसी समय भी किसी भी स्थान, में किसी भी प्रकार के समाज में इसका प्रयोग हो सकता है। वर्ण व्यवस्था का आदर्श स्वाभाविक एवं विकासमान सामाजिक सोपान है।'²¹

ये निर्दोष से लगने वाले मैक्समूलर आदि विद्वान अपनी अपनी रचनाओं द्वारा भारतीयों को बड़ी विनम्रता के साथ यह समझाना चाहते थे कि तुम दार्शनिक हो। भौतिक जीवन तुम्हारे लिए चिंतनीय नहीं है। तुम भौतिक जीवन की गुत्थियों को नहीं सुलझा सकते और न ही तुम्हें ऐसा करना चाहिये, इस काम का जिम्मा इन भौतिकवादी यूरोपियनों के सुपुर्द कर दो। अतः आध्यात्मवादी शिविर की अन्ततः मुराद यही थी– 'यदि भारतवासी तत्त्वतः आध्यात्मिक समस्याओं में खोए रहने वाले दार्शनिक हैं तो उनके भौतिक मामलों का संचय उनके साम्राज्यवादी प्रभुओं के हाथों में रहना ही चाहिए।' ²²

दूसरा शिविर भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का कटु आलोचक ही नहीं बल्कि निंदक भी था। इस शिविर का नेतृत्व गिब्वन, ग्रीन, सैनर्ट ने

किया। गिबबन ने लिखा। 'पूरा प्राच्य इतिहास पराक्रम, महानता, अपकर्ष और पतन का अविच्छिन्न अभिलेख है।'²³ ग्रीन ने कहा, 'पूर्वी दुनिया के साम्राज्य मुख्यतः कर वसूल करने वाली संस्थाएँ हैं। वे अपनी प्रजा पर प्रयोग करते हैं और समय-समय पर जारी किए गए विशेष आदेशों के सिवा किसी प्रकार का कानून लागू नहीं करते।'²⁴ सैनर्ट ने फरामाया— 'भारत में राज्य या स्वदेश का भाव कभी जगा ही नहीं और किसी राजनीतिक संविधान का विकास तो वह वैचारिक धारातल पर भी नहीं कर पाया।' ²⁵ इस शिविर द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गए उनका सार यह था कि वह भारत में निरंकुश तंत्र का हामी है। यहां कभी कानून का शासन रहा ही नहीं। भारतीयों के भाग्य में विदेशियों के शासन में रहना लिखा है तथा उनका धार्मिक और सामाजिक जीवन इतना अपवित्र और असभ्य है कि वे जनतंत्र और यहां तक कि स्वशासन के लिए भी सर्वथा अयोग्य हैं। इन बर्बर असभ्य और पतित भारतवासियों को अंग्रेजों का कृतज्ञ होना चाहिए कि वे इन्हें सभ्य बनाना चाहते हैं।

साम्राज्यवादी इतिहास लेखन और ब्रिटिश सरकार का प्रचारतंत्र इस धाराणा को फैलाने में काफी कामयाब रहा कि मुसलमान विदेशी हैं।

साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की तीखी प्रतिक्रिया उग्र राष्ट्रवाद के रूप में हुई। भारतीय इतिहास लेखन का उन्मेष राष्ट्रीय आन्दोलन की फोरी आवश्यकता के अनुरूप हुआ। जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलन में उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद का असर बढ़ता गया उसी अनुपात में भारतीय इतिहास लेखन का झुकाव हिन्दू एवं मुस्लिम साम्प्रदायिकताओं की ओर गहरा होता गया। उग्र राष्ट्रवाद तीन चरणों में भारतीय राजनीति में विकसित हुआ और उसी अनुरूप भारतीय लेखन भी।

पहले दौर के इतिहासवेत्ताओं में जिनका समय 19 वीं सदी के अन्तिम तीन दशक है, भगवान लाल इन्द्र जी, राम कृष्ण गोपाल भंडारक, राजेन्द्र लाल मिश्र,

बाल गंगाधर तिलक, रमेशचन्द्र दत्त और पूर्णेन्दुनारायण सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। 1887 में रमेश चन्द्र दत्त ने ब्राह्मणकालीन सभ्यता पर एक लेख लिखकर यह दिखाने का प्रयत्न किया कि प्राचीन काल में राजा सभी के प्रति न्याय करता था।²⁶ 1894 में पूर्णेन्दुनारायण सिंह ने अपने एक लेख में आकलैंड के इस कथा का जोरदार खंडन किया कि 'यह बात सबसे पहले ब्रिटेन वासियों ने सिखाई कि शासन का उद्देश्य और प्रयोजन शासक की निजी शक्ति का विविवर्धन नहीं, बल्कि जन सामान्य का कल्याण है।'²⁷

दूसरा दौर बंग-भंग के आंदोलन के समय का है। 1907 में अपने एक लेख में ए0 सी0 दास ने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के इस मत को असहमत होकर दुहराया कि हिन्दु लोग स्वेच्छाचारी शासन के अभ्यस्त रहे हैं और इस देश में एक सुस्पष्ट शक्ति के रूप में लोकतंत्र का प्रस्तित्व कभी नहीं रहा, उन्होंने आगे कहा कि 'जो राजतंत्र प्राचीन भारत में फूला-फला, वह निरंकुश नहीं बल्कि सीमित राजतंत्र था।'²⁸

तीसरा दौर 1921 के गांधीवादी आंदोलन की विफलताओं का नतीजा था। इस समय हिन्दू साम्प्रदायिकता अपने चरम पर थी। हिन्दू महासभा की गतिविधियां धड़ल्ले से चल रही थीं। आर0 एस0 एस0 और जमाते इस्लामी का जन्म हो चुका था तथा हिन्दू-मुसलमानों के बीच आये दिन खून खराबा हो रहा था। इस समय के इतिहासकारों ने हिन्दुओं के लिये स्वर्णिम अतीत तलाश कर लिया। इस दौर की प्रमुख रचना काशी प्रसाद जायसवाल 'हिन्दू पालिटी', 1924 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास में गणराज्यों का महत्व दिखलाया। उन्होंने सिद्ध किया कि प्राचीन हिन्दू राजनीतिक ढांचा अंशतः एथेंस के गणतन्त्रों और अंशतः ब्रिटेन के ढंग के संवैधानिक राजतंत्रों से बना हुआ था। इसमें पौर जनपद जैसी जन सभाएँ थीं। जो राज शक्ति पर अंकुश

रखती थीं। ये संस्थाएँ उन संस्थाओं से अधिक उन्नत थीं जिन पर, आधुनिक स्विटजरलैंड या संयुक्त राज्य अमरीका गर्व कर सकता है। अपने अध्ययन के उपसंहार में उन्होंने लिखा— हिन्दुओं द्वारा की गई संवैधानिक प्रगति को मात देने के बात दूर, उसकी बराबरी भी संभवतः कोई प्रचीन राज्य व्यवस्था नहीं कर सकती। यह पुस्तक राष्ट्रवादियों के लिए वेद बन गई।²⁹

1916 से 1925 तक की राष्ट्रवादी आंदोलनों के समय पुनरुत्थानवाद से संबन्धित शोध लिखे गए, जिसमें हिन्दुओं के अतीत का गौरव गान किया गया। बी० के० सरकार ने लिखा: 'भारत ने एक समय समूची मानव जाति का नेतृत्व किया था' और हिन्दू राज्य पूर्णतः धर्म निरपेक्ष थे।³⁰ एन० सी० वंद्योपाध्याय ने लिखा— प्राचीन भारतीय राजा न तो देवत्व का दावा कर सकता था और न उसे कोई मताधिकार ही प्राप्त था।³¹ बी० आर० आर० दीक्षितार ने अतीत के गुणगान में अति ही कर दी। उन्होंने लिखा— 'देश की भौगोलिक अखंडता तथा दिग्विजय के द्वारा कन्या कुमारी से हिमालय तक के भू-भाग का चक्रवर्ती शासक बनने के प्रत्येक राजा के आदर्श को देखते हुए इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि देश में प्रबल राष्ट्रवादी भावना विद्यमान थी।³² एस० के० अभ्यंगार ने तो न जाने कहां से खोज लिया कि 'प्राचीन भारत में प्रचलित शासन प्रणाली उन आदर्शों के बहुत निकट पहुंची दिखाई देती है, जिन्हें साकार करने के प्रयत्न में लोकतन्त्र आज भी जुटा हुआ है।'³³

इस अतीतोन्मुखी पुनरुत्थानवादी इतिहास लेखन के पीछे तीन उद्देश्य थे। 1. राष्ट्रवादियों के लिए बौद्धिक खुराक जुटाना और राष्ट्रवादी आन्दोलन को बल देना 2. अतीत की उत्साहबद्ध तस्वीर प्रस्तुत करने में देशवासियों में प्रबल आत्म विश्वास जागृत करना और 3. अतीत को श्रेष्ठ बताकर यह सिद्ध करना था कि जब हमें अतीत में स्वशासन प्राप्त था तो कोई कारण नहीं कि उन्हें वर्तमान

में भी वह क्यों नहीं मिले।

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के दुष्परिणाम और मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय

1. ब्रिटिश इतिहासकारों का अनुसरण करते हुए इन राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के मध्य काल को 'मुस्लिम काल' कहा। तुर्क, अफगान और मुगल शासकों के शासन को मुस्लिम शासन कहा गया और इन शासकों को विदेशी की संज्ञा दी गई। साम्राज्यवादी दृष्टिकोण वाला भारतीय इतिहास ही उन दिनों स्कूलों कालेजों में पढ़ाया जाता था, जो इस बात पर बल देता था कि मध्यकालीन भारत में सभी मुस्लिम शासक थे और सभी गैर मुस्लिम शासित थे राष्ट्रवादी इतिहासकार इन मान्यताओं का खंडन नहीं कर पाएँ। यद्यपि मुस्लिम जनता हिन्दु जनता की तरह गरीब तथा करों से उत्पीड़ित थी और दोनों को शासक—सामंत—सरदार और जमींदार भले हो ही वे मुसलमान हों या हिन्दू, तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे और उन्हें निकृष्ट प्राणी समझते थे।

राष्ट्रवादी इतिहासकार इस तथ्य को सामने नहीं ला सके कि प्रत्येक देश की राजनीति की तरह ही प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय राजनीति धार्मिक आधारों पर नहीं बल्कि आर्थिक और सामाजिक हितों पर आधारित थी। शासकों और विद्रोहियों दोनों ने अपने भौतिक हितों और महत्वाकांक्षाओं को छिपाने के लिए धर्म का सहारा लिया। इसके अतिरिक्त साम्राज्यवादी और राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय समिजित संस्कृति की धारणा पर प्रहार किया। बिलाशक भारत में विभिन्न संस्कृतियां थीं। मगर यह विभिन्नता धार्मिक आधार पर नहीं थी। एक क्षेत्र के लोगों तथा एक ही क्षेत्र के उच्च और मध्यवर्गों के सांस्कृतिक ढांचे समान थे फिर भी राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने हिन्दू साम्प्रदायिकता के विरोध

पी होकर यह दावा किया कि भारत में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ भिन्न थीं।

39

2. राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की पुनरुत्थानवादी अंतर्वस्तु ने शिक्षित हिन्दू मध्य वर्ग को तो प्रभावित किया। किन्तु किसान-मजदूरों के हितों की चिन्ता करने वाले प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को अपने से बिल्कुल काट दिया।

3. प्राचीन हिन्दु संस्थाओं के अत्यधिक गौरव-गान से यह विचारधारा मुसलमान विरोधी बन गई, यद्यपि ऐसा अचेतन रूप में हुआ। 'लिखइ सुधाकर गा लिखि राहू'।

4. अतीत की आलोचना रहित विवेचना से वर्ण व्यवस्था महिमा मंडित हो गई। इस तथ्य की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया कि प्राचीन काल का समूचा विधि निर्माण उच्च वर्गों की हिफाजत के लिए था। शासक वर्ग ने जानबूझ कर अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए धर्म का दुरुपयोग किया। वे इस सवाल से कन्नी काट गये। उन्होंने कभी भी इस तथ्य पर विचार करने की तकलीफ गवारा नहीं की कि धन और राजनीति एक दूसरे के सहयोगी हैं।

5. प्राचीन राज्य व्यवस्था का धार्मिक पहलुओं के आधार पर अध्ययन नहीं किया गया। कुछ लोगों ने दूर की कौड़ी खोज निकाली कि भारतीय राज्य धर्म निरपेक्ष थे। किन्तु इन महानुभावों ने यह नहीं सोचा कि पश्चिमी देशों में भी पूर्णतः धर्म निरपेक्ष राज्य 1784 के पहले स्थापित नहीं हुए थे।

6. हिन्दू साम्प्रदायिक भावना के अत्यधिक विकास के कारण मध्यकाल की महान उपलब्धियों की अवहेलना की गई, जिनका नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों का उच्च अभिजात्य वर्ग यह समझ बैठा कि वह विदेशी ही है, वह श्रेष्ठ कौम है, जिसे दुनिया पर शासन के लिए बनाया गया है। अतएव उन्होंने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रेरणा के लिए अरबों तथा तुर्कों के इतिहास की ओर देखना शुरू कर

दिया।

धार्मिक सुधार आंदोलन और उभरती हुई साम्प्रदायिक भावनाएं

रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज को प्रबुद्ध एवं जागृत करने में धार्मिक सुधारकों ने महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाईं। राजा राम मोहन राय का 'ब्रह्म-समाज', गोपाल हरि देशमुख 'लोक हितवादी' की 'परमहंस मंडली विवेकानन्द का 'रामकृष्ण मिशन' दयानन्द का 'आर्य समाज', श्रीमती एनीबेसेट की 'थियोसोफीकल सोसाइटी', सर सैयद अहमद खां का 'अलीगढ़ स्कूल' आदि कि सकारात्मक उपलब्धियां महत्वपूर्ण हैं। इन आंदोलनों के नकारात्मक पक्ष भी हैं, जिससे साम्प्रदायिक विष्वेदियों को फूलने फलने के उचित अवसर मिलें। पहला नकारात्मक पक्ष अतीत को महान सिद्ध करना था। जिसके लिए धर्म ग्रन्थों से प्रचुर प्रमाण एकत्रित किए गए, जिसने रहस्यवाद और छद्म वैज्ञानिक चिंतन का पोषण किया तथा अतीत के प्रति मिथ्याभिमान और आत्म संतुष्टि की आत्मघाती भावनाएं पनपने लगीं। अतीत में स्वर्ण युग ढूढ़ने की प्रवृत्ति ने आधुनिक विज्ञान और सामाजिक विकास में बाधाएं उत्पन्न कीं।

दूसरा नकारात्मक पक्ष सबसे घातक था। इन आंदोलन ने हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों, पारसियों को विभाजित करने तथा हिन्दुओं के उच्च एवं निम्न वर्णों को अलगाने का प्रयास किया। सांस्कृतिक विरासत के नाम पर धार्मिक और दार्शनिक पहलुओं पर अधिक जोर दिया गया। ये पहलू समस्त भारतीय जनगण की समान विरासत नहीं थे। आवश्यकता थी समान सांस्कृतिक विरासत को ढुंढने और विकसित करने की और वह स्थापत्य, साहित्य, संगीत, विज्ञान और टेक्नोलौजी की सु दृढ़ परम्पराओं में मौजूद भी थी। हिन्दु धर्म सुधारकों ने भारतीय अतीत की प्रशंसा को प्रचीन काल तक ही सीमित रखा और इतिहास के मध्यकाल को

मूलतः अवनति के युग के रूप में देखा । यह दृष्टिकोण अ-ऐतिहासिक नहीं बल्कि सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से भी हानिकारक था। इससे द्विराष्ट्र का सिद्धान्त जन्मा। मुस्लिम मध्य वर्ग ने अपनी परम्पराओं तथा आत्म गौरव के क्षणों के लिए पश्चिम एशिया के इतिहास की ओर देखना शुरू कर दिया। प्राचीन काल और धर्म की अन्ध प्रशंसा ने निम्न जातियों को राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से काटने का काम किया क्योंकि निम्न वर्ण कदापि इस मान्यता को स्वीकार नहीं कर सकते थे कि अतीत स्वर्ण युग था जबकि निम्न जातियों के साथ उस युग में लोमहर्षक अत्याचार किये जाते थे।

यद्यपि आधुनिक काल में साम्प्रदायिकता के जन्म के लिए अन्य कारण भी निश्चित रूप से जिम्मेदार थे— जिसमें राजनीतिक कारण अहं था, किन्तु धार्मिक सुधार आंदोलनों ने इससे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मुसलमानों की सामाजिक स्थिति और साम्राज्यवादी पैतरे

साम्राज्यवाद की छत्रछया में भारतीय शिक्षितों में मध्यवर्ग और व्यापारियों के पूंजीपति वर्ग का भी उदय हुआ उसमें मुसलमान पिछड़ गये। सन् 1881 की जनगणना के अनुसार मुसलमान 19.7 प्रतिशत और हिन्दू 7.4 प्रतिशत थे । प्रशासन की भाषा जब तक फारसी रही तब तक मुसलमान – शिक्षित वर्ग का सरकारी सेवाओं में वर्चस्व बना रहा लेकिन जब अंग्रेजी प्रशासन और अदालतों की अनिवार्य भाषा हुई तो मुसलमान उस दौड़ में पिछड़ गये। इसके विपरीत हिन्दू मध्यवर्ग ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर अपनी शक्ति बढ़ाई । 'बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में अर्थात् हिन्दू बहुल क्षेत्रों में उत्तर में मुस्लिम बहुलक्षेत्रों की तुलना में व्यापार तथा शिक्षा का विकास काफी पहले शुरू हो गया था । 1882 में हंटर कमीशन की रिपोर्ट से पता लगता है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा के मामले में

औसतन मुसलमानों का अनुपात 3.65 प्रतिशत था। आज भी मुसलमानों की तुलना में हिन्दूओं में साक्षर लोगों की संख्या ज्यादा है इसलिए भारतीय बुर्जुआ वर्ग का उदय होने के साथ-साथ ऐसे भेदभावों के लिए परिस्थितियां तैयार हो गयीं जो बहुत आसानी से साम्प्रदायिक रूप धारण कर सकती थीं।³⁵

भारतीय बुर्जुआ वर्ग में हिन्दू ही अधिक थे और उसमें भी एक वर्ग विशेष के गुजराती मारवाड़ी बनिये, मुसलमानों में पेट्टी बुर्जुआ नहीं के बराबर था। व्यापार और दुकानदारी को सम्पन्न मुसलमान बनिया-वक्कालों का काम समझते थे और उससे घृणा करते थे। मुसलमानों का ऊपर वर्ग जिसका मुख्य आधार बड़े जमींदारों में था, व्यापारिक एवं औद्योगिक पूंजीपति वर्ग की उन्नति को देखकर खुश नहीं हुआ क्योंकि उसे ऐसा लगता था कि यह उन्नति हिन्दुओं की या 'हिन्दू बनयो' की उन्नति है। इसे वे बड़ी खतरनाक स्थिति मानते थे।³⁶

अंग्रेजों ने जब सामंतवाद विरोधी प्रगतिशील भूमिका अदा की तो हिन्दू मध्य वर्ग अंग्रेजों के अधिक निकट था। धार्मिक संकीर्णता और मुसलमान सामंती राज्य के अन्तिम अवशेष समाप्त हो जाने की वहज से मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा अंग्रेजों से ज्यादा नफरत करते थे। बाद में जब अंग्रेजों ने सामंतवाद से समझौता किया तो मुसलमान उनके निकट हुए क्योंकि हिन्दुओं में पूंजीवादी प्रगतिशील अधिक थे। कांग्रेस ऐसे ही पूंजीवादी मध्य वर्ग के तबकों की जमात थीं।

ब्रिटिश साम्राज्य का सुदृढ़ आधार भारत के राजे रजवाड़े, जमींदार और बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिक्रियावादी हिस्से थे किन्तु इन तीनों की 'स्वामिभक्ति' के बावजूद वह स्वयं को सुरुक्षित महसूस नहीं करते थे। सन 31 की जनगणना के आधार पर भी चार हजार भारतीयों के बीच में अंग्रेजों की संख्या एक थी। 1857 को साम्राज्यवाद भुला नहीं पाता था, जब अंग्रेजों के झुण्ड गाजर मूली की तरह

काट दिये गये थे। इस प्रतिक्रियावादी विदेशी शासन के राजतंत्र की सुरक्षा के लिए यह जरूरी था कि वह जनता में फूट डाल कर अपना सामाजिक आधार तैयार करें। लेकिन इस तरह का सामाजिक आधार प्रगतिशील तत्वों में मिल सकता था, क्योंकि वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध तने रहते थे। यह आधार उन्होंने प्रतिक्रियावादी तत्वों के बीच से ही तैयार किया। साम्प्रदायिक वैमनस्य पैदा करके इसका मोहरा उन्होंने मुस्लिम प्रतिक्रियावादी वर्ग को बनाया। कांग्रेस मध्य वर्ग को प्रतिनिधित्व का साम्राज्यवाद के लिए चुनौती बन सके। इसलिए मध्यवर्ग को बांटना उसके हित में था। 'भारतीयों के राष्ट्रीय आन्दोलन को दुर्बल करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपना कर मुस्लिम मध्यवर्ग और हिन्दू मध्यवर्ग के बीच द्वन्द्वों को उजगार कर मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ खड़ा करने का रास्ता अपनाया।' ³⁷

राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम दौर और मुस्लिम लीग का उदय

यद्यपि कांग्रेस की स्थापना साम्राज्यवाद के पहलूये हयुम की पहल पर हुई थी किन्तु वह शीघ्र ही साम्राज्यवादी स्वार्थ के प्रतिकूल हो गयी। नतीजन ब्रिटिश शासकों ने कांग्रेस पर हमला बोला और सैयद अहमदखां ने मुसलमानों से कांग्रेस से दूर रहने की अपील की। प्रारम्भ के वर्षों में मुसलमानों का झुकाव कांग्रेस की ओर था। किन्तु 1893 के बाद उसमें गिरावट आती गयी। सुनिश्चित रूप से इसका एक खास कारण सर सैयद अहमद वगैरह का और ब्रिटिश शासकों की मेहरबानी से 1890 के बाद होने वाले हिन्दू-मुस्लिम दंगो, गोबध विरोधी आंदोलन, हिन्दी-उर्दू विरोध आदि भी एक हद तक कांग्रेस से मुसलमानों को अलग रखने में सहायक हुए। ³⁸

गरमदली राजनीति के उग्रराष्ट्रवाद ने साम्प्रदायिकता को उखाड़ने में

अहम भूमिका अदा की। राजनीतिक दृष्टि से प्रगतिशील किन्तु सामाजिक दृष्टि से घोर प्रतिक्रियावादी गरमदलियों ने पुनरुत्थान का जो बेतुका ढोल बजाया, वह साम्प्रदायिक— वन में दावानल सिद्ध हुआ। उस मनहूस दिन से आज तक दावानल बराबर धधक रहा है। लाल—बाल—पाल तीनों ही कट्टर राष्ट्रवादी और भंयकर पुनरुत्थानवादी थे। लाला लाजपतराय आर्य समाज के नेता थे, बाल गंगाधर तिलक पक्के सनातनी और विपिनचन्द्र पाल काली मां के उपासक थे। इनका कहना था; हिन्दू धर्म ही हमारी आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकता है। राष्ट्रियता एक धर्म है और ईश्वर की देन है'... उन्होंने शिवाजी, गणपति, गोहत्या विरोध आदि के सामन्तवादी संस्कृति के हथियारों से पूंजीवादी संस्कृति को पराजित करने की नाकामयाब कोशिश की।³⁹

‘अगर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय वगैरह ने धार्मिक और सामाजिक मामलों में वही रुख अपनाया होता जो नरम दल वालों ने अपनाया था, तो सैयद अहमद और शासकों का किसी भी प्रकार का विरोध मुसलमानों को भी भारी संख्या में कांग्रेस में शामिल होन से न रोक पाता।⁴⁰

गरमदलियों के पुनरुत्थानवादी विचारों ने मुस्लिम लीग की स्थापना और पृथक निर्वाचन की मांग का बढ़ावा दिया।

1905 का बंग भंग विरोधी और स्वदेशी आंदोलन नरमदलियों के कारण बंगाल तक ही सीमित रह गया। इस आन्दोलन का गरमदलियों की प्रगतिशील राजनीतिक लाइन के आधार पर राष्ट्रव्यापी प्रसार दिया जाता तो बहुत संभव था कि हिन्दू—मुस्लिम के बीच की खायी घटती और गरम दल वालों का पुनरुत्थानवादी जोश क्रमशः क्षीण होता चला जाता।

प्रतिनिधि संस्थाओं के निर्वाचन की प्रणाली का मामला, ब्रिटिश साम्राज्य ने इस ढंग से प्रस्तुत किया कि साम्प्रदायिक विद्वेष को बढ़ावा मिले, मताधिकार

शिक्षा या संपत्ति के आधार पर दिया, गया जहां मुसलमान वर्ग हिन्दुओं की तुलना में पीछे छूट जाता था। 'यही वजह थी कि पृथक निर्वाचन की मांग को मुसलमानों के बीच प्रेरणा मिली। इन स्थितियों से सरकार के लिए फूट के बीज बोना और दोनों सांप्रदायों के बीच निहित विरोधों को सामने लाकर समूची राजनीतिक प्रणाली का ढांचा तैयार करना आसान हो गया।' ⁴¹

1905 के आंदोलन की अभूतपूर्ण सफलता से ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भांप लिया कि अगर मध्यवर्ग की इस जुझारु एकता को न तोड़ा गया तो साम्राज्यवाद के पांव क्रब में ही दीखेंगे। 'फूट डालो और राज करो' के अनुगामी लार्ड मिंटो की शह पर बंग भंग विरोधी आंदोलन का विरोध करने वाले ढाका के नबाव सलीमुल्ला जिन्होंने 'इस खिदमत के लिए सम्राजियों के मेहरबानी का शुक्रिया अदा किया और भारत सरकार ने उन्हें कम व्याज की दर पर 13 लाख रुपये का कर्ज दिया।' ⁴² प्रिंस आगा खां और सैयद अहमद खां की पहल पर तथा अलीगढ़ के प्रिन्सीपल आर्च बोल्ड की प्रेरणा से 30 दिसम्बर 1906 को मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।

राष्ट्रीय आंदोलन की विफलताएं और साम्प्रदायिकता का विकास

स्वाधीनता आंदोलन में गांधी का उदय प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हुआ। गांधी ने जो रणनीति विकसित की वह भारत के उदीयमान बुर्जुआ वर्ग के हितों के ठीक अनुरूप थी। बुर्जुआ वर्ग का चरित्र दुहरा था। एक तरफ उसे साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए किसान मजदूर जनता की जरूरत थी, दूसरी तरफ वह इनकी संगठित शक्ति से डरता था, जो उसके अस्तित्व के लिए भी खतरा थी। गांधी ने इस क्षेत्र में बेजोड़ भूमिका अदा की। किसान मजदूर जनता को आंदोलन से सक्रिय किया और जब यह देखा कि आंदोलन की धारा बुर्जुआ वर्ग के हितों के

विरुद्ध जा रही है, आंदोलन को वपास ले लिया इसके लिए उन्होंने नए शब्द गढ़े अहिंसा, असहयोग, सविनय अवज्ञा, हृदय परिवर्तन, ट्रस्टीशिप और रामराज्य। ये मात्र शब्द नहीं थे तत्कालीन बुर्जुआ वर्ग की रणनीति थी। इन्हीं हथियारों के बल से भारत के पूंजीपति वर्ग ने सत्ता हथियाली।

गांधी के नेतृत्व में आंदोलन में धार्मिक तत्वों के समावेश हो जान से हिन्दू साम्प्रदायिक शक्तियों को बल मिला जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मुस्लिम साम्प्रदायिकता भी उभर कर सामने आई। गांधी ने महात्माई का ढोंग रचा। स्वयं का राष्ट्रभक्त के रूप में प्रस्तुत न करके हिन्दू महात्मा के रूप में पेश किया। 'भारत की स्वतन्त्रता से अधिक महत्व मेरे लिए अपनी मुक्ति का है, मैं पहले हिन्दू हूँ और देश भक्त बाद में।' ⁴³ जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप जिन्ना की जबान से यह निकला 'मेरे लिए सबसे पहले इस्लाम है। अदना से अदना मुसलमान मेरी नजर में गांधी से अधिक पवित्र है।' ⁴⁴

प्रथम असहयोग आंदोलन के दौरान गांधी ने अपने मंतव्य स्पष्ट नहीं किए, स्वराज्य की स्पष्ट व्याख्या नहीं की। अगर कभी स्वराज्य को परिभाषित करने भी बैठे तो धार्मिक दार्शनिक पहेलियों में देश की जनता की आर्थिक और राजनैतिक मांगों को धार्मिक और आध्यात्मिक रूप देकर मजहब को बीच में ला खड़ा किया। गांधी जी ने कहा राजनीति को ईश्वर विश्वास और मजहब के आधार पर चलाओ। मजहब भी ईश्वर विश्वास, हिन्दु—मुस्लिम का अलग—अलग और परस्पर विरोधी था। परिणाम यह हुआ कि जनता के साझा मोर्चा मजहबी टुकड़ों में बंट गया। गांधी जी ने हिन्दू आदर्श पर रामराज्य की पुकार हिन्दुओं के बहलोन के लिए लगाई तो दूसरी ओर इस्लामी सल्तनत और पाकिस्तान की मांग की। ⁴⁵

राजनीति में धर्म के अनधिकृत प्रवेश से क्षुब्ध होकर नेहरू ने गांधी जी के रामराज्य जैसे शब्दों के प्रयोग पर आपत्ति की थी।

प्रथम असहयोग आंदोलन जब किसानों की मुक्ति का हथियार बन गया और सामंती — पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध जाने लगा तो चोरी-चौरा की हिंसा के नाम पर आंदोलन वापस ले लिया।

आंदोलन की सामप्ति के फौरन बाद साम्प्रदायिक झगड़े शुरू हो गए। आंदोलन को सहसा रोक देने से यह स्थिति आ गई। अवरुद्ध हिंसा को तो कहीं न कहीं निकलना था और वह साम्प्रदायिक दंगों के रूप में प्रकट हुई। अगर आंदोलन सामंती साम्राज्यवाद विरोधी की धुरी पर बना रहता, नेतृत्व बुर्जुआ न होता साम्प्रदायिक सद्भावना हिन्दू-मुस्लिम तबकों के कामगार हिस्सों से बनी रहती।

आंदोलन की असफलता से जन्मे घोर साम्प्रदायिक हत्याओं के दौर में सांप्रदायिक संस्थाओं के प्रेत प्रकट हुए। उस समय का चित्र प्रस्तुत करते हुए डॉ. ताराचन्द्र ने लिखा है:— “हिन्दु महासभा की लोकप्रियता बढ़ रही थी। मदनमोहन मालवीय इस मृतप्राय संस्था को पुनर्जीवित कर रहे थे और लाजपतराय, श्रद्धानन्द एवं जयकर जैसे कांग्रेस के महारथी उसकी ओर आकृष्ट हो रहे थे। लाजपतराय हिन्दू मुस्लिम एकता से निराश हो चुके थे और बाद में टैगोर ने भी उनके मत की पुष्टि कर दी थी।”⁴⁶ 1923 में बनारस में हिन्दू हितों की रक्षा के लिए एक हिन्दू संगठन बनाने का प्रस्ताव रखा और श्रद्धानन्द ने मुसलमानों की शुद्धि का अभियान शुरू किया।

मुस्लिम लीग निष्क्रिय हो चुकी थी। लेकिन 1923 में हिन्दू महासभा के पुनरुत्थान के कारण यह पुनः सक्रिय हो उठी।

किचलू इसकी प्रतिक्रिया के रूप में ‘तबलीग’ और ‘तंजीम’ आंदोलन शुरू कर चुके थे। फज्ले हुसेन ने दलित वर्गों को मुसलमान बना लेने की बात रखी। मुस्लिम लीगियों और खिलाफतियों ने स्वर में स्वर मिलाया। इसके बाद जो दंगे

हुए उनसे विद्वेष और भड़का, भावनाएँ और उत्तेजित हुई।⁴⁷

असहयोग आंदोलन की विफलता और आंदोलन में धार्मिक पुट की अधिकता ही साम्प्रदायिक मतभेदों का कारण बनी। लाला लाजपत राय ने 1925 में लिखा:

“दुर्भाग्यवश पिछले दशक में हमने ऐसा वातावरण पैदा किया जिसमें तर्कशीलता और सहिष्णुता के बजाय रूढ़िप्रियता और अहंकार की बू भरी है, इस वातावरण को पैदा करने में असहयोग आंदोलन का काफी हाथ था। यहां दुर्भाग्य था कि भारत में खिलाफत ने राजनीतिक रूप न लेकर धार्मिक आधार ग्रहण किया। इसका समर्थन करने के राजनीतिक आधार मौजूद थे। यह और भी दुर्भाग्यपूर्ण हुआ कि महात्मा गांधी तथा खिलाफत आंदोलन के अन्य नेताओं ने इस पर धार्मिकता का इतना गहरा रंग चढ़ाया, जबकि वस्तुतः और मूलतः यह धार्मिक से भी ज्यादा राजनीतिक आंदोलन था। असहयोग के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए धर्म का मुंह देखना भयंकर भूल थी। इससे संकीर्ण मनोवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला। इससे ऐसी शक्तियों को बल मिला जो एकताबद्ध भारत की भावना की विरोधी हैं।”⁴⁸

इसी दौर में 1925 में विजया दशमी के दिन हिन्दू महासभा के गर्भ से आर. एस. एस. का जन्म हुआ, ठीक उसी प्रकार जैसे मुस्लिम लीग की कोख से जमाते इस्लामी जन्मी। उस दिन के. एस. हेडगेवार के घर पर पांच व्यक्तियों डॉ. बी. एस. मुंजे, डॉ. एल.बी. परांजपे, डॉ.के.बी. हेडगेवार, डॉ. थोलकर और बाबाराव सावरकर ने विष वृक्ष को रोप दिया। ये सभी महानुभाव हिन्दू महासभा के सक्रिय कार्यकर्त्ता और नेता थे, संघ का फौरी उद्देश्य हिन्दुओं को संगठित करना था और मुसलमानों पर हमला करने के लिए तूफानी दस्ते तैयार करना था। किन्तु कार्यक्रम हिन्दू महासभा का ही था। 1925 में लाला हरदयाल ने हिन्दू महासभा

के कार्यक्रम को प्रस्तुत किया।

“मुसलमान और ईसाई हिन्दू धर्म के दायरे से बहुत दूर हैं। क्योंकि धर्म विदेशी हैं तथा वे फारसी, अरबी तथा यूरोपीय परम्पराओं से प्रेम करते हैं। अतः जैसे कोई आंख की किरकिरी निकालता है वैसे ही इन दोनों धर्मों की शुद्धि कर देनी चाहिये। अफगानिस्तान और सीमा के पहाड़ी इलाके एक समय हिन्दुस्तान के हिस्से थे, आज इस्लाम के आधिपत्य में हैं। यदि हिन्दू अपनी रक्षा करना चाहते हैं तो उन्हें अफगानिस्तान की सीमाओं को जीतना तथा पहाड़ी कबीलों को हिन्दू धर्म में परिवर्तन कर लेना चाहिए।”⁴⁹

1928 में साम्प्रदायिकता से उत्पन्न राजनीति के विघटन को भरने का प्रयास किया गया। सर्व दलीय सम्मेलन ने मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक उपसमिति नियुक्त की। जिसका उद्देश्य नए संविधान के सिद्धान्तों को निश्चित करना था। समिति द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट में सिंध को बंबई से अलग करने की लीग की मांग को मान लिया गया किन्तु उत्तर पश्चिम सीमा में अन्य प्रांतों के समान ही शासन प्रणाली लागू करने का सुझाव दिया गया। देश में साम्प्रदायिकता को खत्म करने का नुस्खा पेश करते हुए मुहम्मद अली जिन्ना ने कहा— “इस्लाम का अर्थ है शांति। राष्ट्रवाद का अर्थ है युद्ध। अल्लाह ने इस्लाम को ऐसी कड़ी बनाया जो सम्पूर्ण मानव जाति को एक कुटुम्ब और एक समुदाय के रूप में आवद्ध करने वाली है, मैं चाहता हूँ कि हिन्दू, ईसाई, यहूदी तथा मूर्ति पूजक सभी आएँ और मेरे साथ मिलकर रहें और संयुक्त बिरादी बनाएं।”⁵⁰

शौकतअली ने नेहरू रिपोर्ट की घोर निंदा की और कहा— ‘हिन्दू लोग दासता के अभ्यस्त हैं और वे दास ही बने रहेंगे और मुसलमान स्वतन्त्रता प्रेमी लोग हैं, वे न तो हिन्दुओं की दासता स्वीकार करेंगे, न अंग्रेजों की।’⁵¹

1931 का सविनय अवज्ञा आंदोलन भी असफल हो गया। फिर साम्प्रदायिक

दंगे हुए, दोनों साम्प्रदायिकताएं फिर मैदान में आ गईं।

10 अक्टूबर 1938 को मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की योजना रखी। और साम्राज्यवाद से गठजोड़ करके कांग्रेस के विरोध द्वारा अपनी योजना को सफल बनाने का प्रयत्न करती रही। इधर संघ की भूमिका दंगों के कारण बढ़ती गई। 1940 में उसके स्वयं सेवकों की संख्या एक लाख तक जा पहुंची।

संघ और हिन्दू महासभा ने कहा, हिन्दू ही राष्ट्र है; भारत के मालिक हिन्दू की होंगे। उधर मुस्लिम लीग के नेताओं ने शासक वर्ग की परिकल्पना को जन्म दिया। उन्होंने अपनी जनता को बताया कि मुसलमान मास्टर-रेस शासक जाति है। मुसलमान उन विशेषताओं से युक्त हैं जो एक शासक जाति में होती हैं, मुसलमान सामर्थ्यवान थे, उन्हें मालूम था कि शासन कैसे किया जाता है तथा उनके पास वह शारीरिक शक्ति थी, जिसका कायर हिन्दुओं में अभाव था।

4 अप्रैल 1939 में दिल्ली में लीग के प्रांतीय सम्मेलन की सदारत करते हुए महमूदाबाद के राजा ने घोषणा की। “करोड़ों (बनियों) को जान लेना चाहिए कि वह समुदाय जिसने कभी आठ सिपाहियों के बल पर भारत जीता था, आज भी अपनी शर्तें मनवा सकता है। विश्व इतिहास में इस मुस्लिम समुदाय की आज भी एक भूमिका है और यदि शोर मचाने वाले कलम घसीटू, जैसे कि हिन्दू है; हमारा विरोध करने का साहस करते हैं तो उनका नामोनिशान इस दुनिया से मिटा दिया जायेगा।”⁵²

1942 का आंदोलन फिर असफल हुआ। साम्प्रदायिक दंगे चलते ही रहे। पूरा देश हिन्दू-मुसलमान के आपसी रक्त पात में फंसा गया एक ओर से डायरेक्ट एक्शन की बात उठी, दूसरी ओर शाखाओं में प्रगति होती गई। सावरकर ने नेपाल नरेश को भारत का सम्राट बनाने के सपने देखे।

अंग्रेजों की बांटों और राज करो नीति सफल हुई। 1947 में देश का

बंटवारा हो गया लाखों हिन्दू और मुसलमान धर्म की भेंट चढ़ गए। दोनों के प्रतिक्रियावादी वर्गों ने सत्ता की बागडोर संभाल ली। जिस जनता ने अपनी महान कुर्बानियों के बाद बुर्जुआ-सामंती वर्ग को सत्ता दिलाई उसकी लड़ाई का एक चरण समाप्त हुआ और दूसरा शुरू। उसे मुकामिल फतह नहीं मिली। फैंज के शब्दों में—

*वो इंतजार था जिसका ये वो सहर तो नहीं,
चले चलो कि वो मंजिल अभी नहीं आई।*

सन्दर्भ

1. फ्रेडरिक एंगेल्स-धर्म, पृ. 423
2. हरबंस मुखिया-धर्म निरपेक्षता आज के संदर्भ में, मतान्तर-जन 1970, पृ. 79
3. विपिन चन्द्र-आधुनिक भारत, पृ. 08
4. उप., पृ. 08
5. जी. एन. शर्मा -मेवाड़ एंड दि मुगल एंपरर्स, पृ. 43-44
6. प्रभा दीक्षित-साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, पृ. 119-120
7. बी. टी. रणदिवे-जाति और वर्ग, पृ. 49
8. विपिन चन्द्र-पूर्वोद्धृत, पृ. 34
9. उप., पृ. 35
10. अमृतलाल नागर-गदर के फूल, पृ. 260
11. उप. पृ. 260
12. उप. पृ. 265

13. विपिन चन्द्र-पूर्वोधृत, पृ. 128
14. उप. पृ. 129
15. रजनी पामदत्त-आज का भारत, पृ. 462
16. उप. पृ. 463
17. रामशरण शर्मा-प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, पृ. 01
18. उप. पृ. 01
19. उप. पृ. 01
20. रामशरण शर्मा-प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था, पृ. 11
21. उप. पृ. 12
22. रामशरण शर्मा-प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, पृ. 02
23. उप. पृ. 01
24. उप. पृ. 01
25. उप. पृ. 02
26. उप. पृ. 03
27. उप. पृ. 03
28. उप. पृ. 03
29. उप. पृ. 04-05
30. उप. पृ. 08
31. उप. पृ. 08
32. उप. पृ. 08
33. उप. पृ. 10
34. विपिन चन्द्र-पूर्वोधृत, पृ. 202
35. रजनी पामदत्त-पूर्वोधृत, पृ. 465

36. उप. पृ. 465
37. अयोध्या सिंह—भारत का मुक्ति—संग्राम, पृ. 218
38. उप. पृ. 224
39. सव्यसाची—भारत की स्वाधीनता का इतिहास, पृ. 89
40. अयोध्या सिंह—पूर्वोधृत, पृ. 115—216
41. रजनी पामदत्त—पूर्वोधृत, पृ. 433
42. अयोध्या सिंह—पूर्वोधृत, पृ. 224
43. यशपाल—बात—बात में बात, पृ. 102
44. उप. पृ. 70
45. उप. पृ. 73
46. रवीन्द्र नाथ टैगोर—थ्रू इण्डियन आईज, टाइम्स आफ इण्डिया, 18 अप्रैल 1924 एक बंगाली समाचार पत्र को दिए गए इण्टरव्यू का अनुवाद ।
47. देसराज गोयल—राष्ट्रीय सेवक संघ, पृ. 30—31
48. उप. पृ. 31
49. प्रभा दीक्षित—साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक सन्दर्भ, पृ. 130
50. वही. पृ. 58
51. वही. पृ. 58
52. वही. पृ. 87

अध्याय एक

राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में सांप्रदायिकता के विभिन्न आयाम

साम्प्रदायिकता 'मिथ्या चेतना' (फॉल्स कांशसनेस) है। यथार्थ को विकृत (डिस्टोर्टेड) और भ्रष्ट (पर्वर्स) रिफ्लेक्शन है। किसी समुदाय विशेष के प्रभुत्वशील वर्ग के प्रतिनिधि अपने वर्गीय हितों को अपने वर्ग के निहित स्वार्थ न बताकर समूचे समुदाय के व्यापक हितों के रूप में व्यक्त करते हैं। प्रभुत्वशील वर्ग के लिए सम्प्रदायवाद उस अवधारणा का नाम है जो यह स्थापित करती है कि एक धर्म विशेष को मानने वाले सदस्यों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक हित एक समान हैं। लेकिन वर्गों में विभक्त समाज में वर्गीय हित होते हैं। एक ही धर्म के अनुयायी शोषक और शोषित वर्गों में विभाजित होते हैं, उनके आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्ध शत्रुतापूर्ण होते हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में भारतीय जनता की आशा-आकांक्षा, भय और घृणा एवं प्रतियोगिता को हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायवाद के मिथ्या और विकृत रूप से प्रस्तुत किया था। औपनिवेशिक भारत में मुसलमान, मुसलमान के नाते तकलीफें नहीं सह रहे थे, बल्कि भारतीय श्रमिकों, किसानों, बेरोजगार नौजवानों, कारीगरों आदि के रूप में कष्ट भोग रहे थे और इसी रूप में हिन्दुओं को भी रखा जा सकता है। हिन्दू और मुसलमान परस्पर एक दूसरे के कष्टों का कारण न थे और न एक दूसरे को तकलीफें पहुंचा रहे थे। इन कष्टों का कारण भारत में

औपनिवेशिक शासन था। औपनिवेशिक शासन के जुए को उतारकर फेंक देने से ही सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता था। अतः सम्प्रदायवाद के विरुद्ध राष्ट्रवादी विचारधारा ही सच्ची विचारधारा थी जो यथार्थ को सही रूप में प्रतिबिम्बित करती थी।

राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगतिशील विचारधारा का नाम था। राष्ट्रवाद अर्थात् साम्राज्यवाद विरोध और प्रतिक्रियावादी विचारधारा का नाम था—सम्प्रदायवाद, प्रकारान्तर से साम्राज्य परस्ती।

साम्प्रदायिकता अतीत का अवशेष नहीं है। मध्यकाल का हेंग ओवर या 'अतीत की भाषा' नहीं है। यह आधुनिक विचारधारा है जो अतीत की विचारधाराओं संस्थाओं और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कुछ पहलुओं और तत्वों का इस्तेमाल अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए करती है।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में सम्प्रदायवाद का उद्भव मध्यकालीन विचारधारा का सहज स्वाभाविक विकास ही था अथवा मध्यकालीन विचारधारा का पुनरुत्थान था, यह कथन सर्वथा झूठ ही नहीं बल्कि अवैज्ञानिक भी है। सम्प्रदायवाद को आमतौर पर गलत तरीके से पुनरुत्थानवादी भी होते हैं, लेकिन ऐसा सदैव नहीं होता। नयी विचारधाराओं के निर्माण में अतीत के तत्वों का इस्तेमाल अवश्य होता है और बहुत-सी विचारधाराएं अतीत के पुनरुत्थान का दावा भी करती हैं। जैसे— जापान का मेजी निरंकुशतावाद और सैन्यवाद, मध्यकालीन शिन्टोइज्म, (राजा की पूजा) पर आधारित था। 1930 के दशक में चीन में चांगकाई-शेक का 'न्यूलाइफ' नामक फासिस्ट मूवमेंट कंफ्यूशियसवाद पर आधारित था। हिटलर और मुसोलिनी की अपीलें भूतकाल की विचारधारा के दकियानूसी तत्वों से भरी होती थी और सुदूर अतीत से अपना वैचारिक खाद्य ग्रहण करती थीं।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता अतीत से खुराक अवश्य लेती थी; लेकिन वह अतीत का अविच्छिन्न हिस्सा नहीं थी; इतिहास की विकास यात्रा का अगला पड़ाव नहीं थी।

प्रायः साम्प्रदायिकता को धर्म का प्रर्याय बनाकर पेश किया जाता है। सम्प्रदायवादी धर्म की दुहाई भी देते हैं। लेकिन, धर्म और साम्प्रदायिकता दोनों कदापि एक नहीं हैं। गांधी जी और मौलाना आजाद धार्मिक व्यक्ति थे लेकिन साम्प्रदायिक नहीं थे। मुहम्मदअली जिन्ना पाश्चात्य जीवन दर्शन से लैस अत्याधुनिक व्यक्ति थे, लेकिन घोर साम्प्रदायिक थे। वी.डी. सावरकर नास्तिक होने की हद तक विवेकवाद के कायल थे, लेकिन हिन्दू फासिस्ट विचार धारा के जनक थे।

राष्ट्रीय आंदोलन का दौर भारतीय नवजागरण का दौर भी है। नवजागरण में धार्मिकता का पुट होता है। राष्ट्रवादियों ने धर्म का सकारात्मक उपयोग किया। धर्म की उस मानवीय अंतर्वस्तु का उद्घाटन किया जो मन को मानवीय और जन को जनवादी बनाती थी, साम्राज्यवाद के खिलाफ गुस्सा पैदा करती थी; राष्ट्रीयता का ज्वार उठाती थी, साम्राज्यवाद विरोध की लहर को जन-चेतना का अंग बनाती थी। इसके विपरीत सांप्रदायवादी धर्म का नकारात्मक इस्तेमाल करते थे। धर्म की उस निषेधात्मक और तत्ववादी विचार सामग्री का उद्घाटन करते थे जो मन को विपाक्त और जन को जनद्रोही बनाती थी, साम्राज्यपरस्ती सिखलाती थी, राष्ट्रीयता के विरुद्ध खड़ी होती थी और जनता को साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में जाने से रोकती थी।

राष्ट्रवादियों का बहुत बड़ा हिस्सा हिन्दू धर्म की विभिन्न विचार सरणियों से अनुशासित था। धार्मिक प्रतीकों और मिथकों का उपयोग ये राष्ट्रवादी करते थे, लेकिन उनका मंतव्य दूसरे धर्म के प्रति घृणा भाव पैदा करना नहीं था, बल्कि

साम्राज्यवाद के विरुद्ध नफरत फैलाना था।

तिलक ने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में गणेशपूजा और शिवाजी उत्सव के रूप में हिन्दू पुट का इस्तेमाल किया। तिलक का राजनीतिक प्रचार और आन्दोलन राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर केन्द्रित होता था। इन उत्सवों के पीछे तिलक का उद्देश्य, जनता को एकत्रित करना था, जिससे संवाद स्थापित हो सके। शिवाजी के महिमा मंडन के पीछे तिलक का लक्ष्य था, जैसा कि उन्होंने कालांतर में स्पष्ट भी किया कि शिवाजी महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय थे। उन्होंने कहा था, मैं उत्तर भारत में अकबर का इस्तेमाल करता, क्योंकि वह हिंदू मुस्लिम दोनों में लोकप्रिय थे। तिलक की राजनीतिक विचारधारा और आंदोलन के तरीके साम्प्रदायिक नहीं थे।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि गांधी जी के कारण साम्प्रदायिकता का प्रसार हुआ, क्योंकि उन्होंने धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल किया। लेकिन हम देखते हैं कि 24 वर्ष के नौजवान ने दक्षिण अफ्रीका में जो आंदोलन चलाया था उसमें मुसलमानों की बड़ी संख्या शामिल थी। गांधी जी ने जो सत्य, सत्याग्रह और अहिंसा के राजनीतिक औजार तैयार किये थे वह हिन्दू धर्म की सकारात्मक मानवीय अंतर्वस्तु की उपज थे और किसी भी दूसरे धर्म की सकारात्मक मानवीय अंतर्वस्तु के विरुद्ध नहीं थे। भारत में उनके पहले तीन आंदोलन—खेरा, चम्पारण और अहमदाबाद—अधार्मिक थे। रौलट एक्ट विरोध जिसने गांधी जी को राष्ट्रीय नेता बनाया, भी धार्मिक नहीं था। गांधी जी की महात्मा की उपाधि धार्मिक नहीं थी। यह उपाधि गुरु, महर्षि और बाबा बैराइटी की नहीं थी। गांधी जी कभी धार्मिक व्यक्ति की तरह नहीं पूजे गये। उनकी मूर्तियां और फोटो नहीं पूजे गये। उनकी अपीलें धार्मिक सेंस में नहीं होती थीं, वह मॉरल सेंस रखती थीं। इसके अलावा हिन्दू-धार्मिकता के आरोप का जवाब देते समय वह मुस्लिम, सिख और

क्रिश्चियन की ठीक वैसी ही धार्मिकता को प्रोत्साहित करते थे। वे धार्मिक राष्ट्रवादियों के साथ समझौता भी करते थे। उनकी धर्मनिरपेक्षता समस्त धर्मों के प्रभावों का प्रतिनिधित्व करती थी जिसे मोहम्मद अली ने धर्मों का संघ कहा था। गांधी जी ने मौलाना आजाद को धार्मिक आधार पर मुसलमानों के बीच कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था। खिलाफत का इस्तेमाल गांधी जी ने साम्राज्यवाद विरोधी भावना को विकसित करने के लिए किया था।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सम्प्रदायवाद धर्म का एक वेहिकल के रूप में प्रयोग करता है। धर्म की मानवीय अंतर्वस्तु से उसका कोई लेना देना नहीं है।

सम्प्रदायवाद सामन्तवाद का मुख्य आधार है। भूस्वामी वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में सम्प्रदायवाद ने उसका खुलकर साथ दिया। अखिल भारतीय स्तर पर सामन्तवाद विरोधी आंदोलन कमजोर रहा और पंजाब तथा बंगाल में उसकी कमजोरी अफसोसनाक रही। इन्हीं प्रांतों में सम्प्रदायवाद की जड़ें सबसे अधिक गहरी थीं।

भारत में अंग्रेजी राज्य के मुख्य सहायक थे— राजा, नवाब और जमींदार 1857 में ही कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, हैदराबाद, बंगाल आदि प्रदेशों के राजाओं और जमींदारों ने अंग्रेजों की पूरी सहायता की थी। 1958 के बाद अंग्रेजों ने अपने इस सामंती आधार को और भी मजबूत कर लिया, नवाबों और ताल्लुकेदारों की वफादारी में बेहिसाब इजाफा हुआ।

संयुक्त प्रांत में, मुस्लिम लीग का नेतृत्व नवाब, जमींदार और पेंशनयाफता नौकरशाह करते थे। 1870 और 1880 के दशकों में सैयद अहमद और राजा शिवप्रसाद ने हिन्दू—मुस्लिम भूस्वामी और नौकरशाहों को लेकर कंजरवेटिव राजनीति को विकसित करने का प्रयास किया। ये वर्ग उभरते हुए मध्यवर्गों और

जनवादी राष्ट्रीय आंदोलन की ताकत को धमकी के रूप में महसूस कर रहे थे। कांग्रेस सरकारी नौकरियों में खुली प्रतियोगिता के पक्ष में थी और लैजिस्लेटिव कौंसिलों में जागीरदारी तत्वों के नामांकन के विरुद्ध थी, जबकि ये तत्व सरकारी नौकरियों में प्रतियोगिता के खिलाफ थे और अपने वर्ग का नोमिनेशन सरकारी सेवाओं और लैजिस्लेचर में चाहते थे। यहां यह उल्लेखनीय है कि जहां हिन्दू सामंती तत्वों और नौकरशाही की दाल नहीं गल सकी जबकि सर सैयद अहमद खान मुस्लिम जागीरदारी तत्वों और नौकरशाही को संगठित करने में कामयाब रहे। मुस्लिम लीग की स्थापना इस दिशा में अगला अध्याय था। मुस्लिम लीग के मंच से जागीरदार तत्व साम्प्रदायिक राजनीति के झंडे के नीचे आकर नौकरियों में साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण और साम्प्रदायिक आधार पर ही पृथक निर्वाचन मंडल के लिए लड़े और इस तरह 1909, 1919 और 1935 के सीमित मताधिकार के बलबूते पर अपने हितों को सुरक्षित रखने में कामयाब रहे।

इस तरह से हम देखते हैं कि सामंतवाद अपने वर्गीय हितों की सुरक्षा के लिए साम्प्रदायवादी विचाराधारा का दामन पकड़ता है और साम्राज्यवाद की गुलामी करता है। एक तरफ उपनिवेशवादी शासन में सरकारी नौकरियों और प्रिवी कौंसिलों में साम्प्रदायिक आधार पर पद हथियाए जाते हैं तो दूसरी ओर साम्राज्यवाद की सेवा में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया जाता है। 1930 की राउंड टेबुल कांग्रेस में सीमांत प्रदेश के जमींदार सर अब्दुल कय्यूम ने कहा कि 'मेरा सूबा अंग्रेजी राज का द्वार रक्षक है फौज में जबानों की भर्ती सबसे ज्यादा इसी सूबे में हुई है।' राजा शेर मुहम्मद खां ने कहा, कि मेरा सूबा पंजाब है, वहां मुसलमानों ने सात सौ साल तक हुकूमत की है। बीच में तीस साल तक रणजीतसिंह भी उस पर कब्जा किये रहे, लेकिन हिन्दुस्तान में मुसलमानों की सरगर्मियों का केन्द्र है पंजाब और उसे रहना चाहिए; पिछली लड़ाई के दौरान

फौज में भर्ती होने वाले रंगरूटों में आधे से ज्यादा मुसलमान थे; लड़ाई के आखिरी साल में तीस हजार मुस्लिम नौजवान सिर्फ रावलपिंडी और झेलम के जिलों से भेजे गये।² स्वीडिश लेखक गुन्नार मिर्डल ने लिखा है कि पाकिस्तान बनने के समय पंजाब की साठ फीसदी जमीन जमींदारों के पास थी, सिंध में दो सौ जमींदारों के पास खेती लायक सारी जमीन थी।³

1937 के बाद मुस्लिम सम्प्रदायवाद की राजनीति सामंती हितों के पक्ष में खुलकर खड़ी हुई। ठीक इसी समय कांग्रेस ने अपने कृषि सुधार कार्यक्रम को लागू करने का ऐलान किया जिसमें लगान में कमी, जोतने वाले का जमीन पर कानूनी अधिकार, जमींदारी उन्मूलन आदि सुधार शामिल थे तो सामंती तत्वों ने इस खतरे की घंटी को धमकी के रूप में गंभीरता से लिया। इस स्टेज पर मुस्लिम लीग ने जागीरदारी तत्वों के निहित स्वार्थों पर की जाने वाली चोट को अपने अस्तित्व के लिए खतरा माना। इसी समय मुस्लिम लीग एक राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरी और उच्चवर्गीय जागीरदारी तत्वों का संगठन बन गयी।

इसी प्रकार 1937 के चुनावों के बाद उ. प्र. के हिन्दू जमींदारों और ताल्लुकेदारों के हिन्दू महासभा में प्रवेश किया। हिन्दू महासभा के प्रेसीडेंट बी.डी. सावरकर ने जमींदारों और किसानों के बीच वर्ग-विरोध पैदा करने वालों की निन्दा की।

1937 से 1943 के दौर में राष्ट्रीय स्तर पर सम्प्रदायवाद में वृद्धि हो जाने से पंजाब में मुस्लिम लीग ने यूनियनिस्ट पार्टी के जनाधार पर ही नहीं उसके नेतृत्व पर भी कब्जा कर लिया।

मुस्लिम लीग के नेता बड़े सामंती के थे और अंग्रेजों के बड़े खैर ख्वाह थे। और अंग्रेजों द्वारा उन्हें सर और खान बहादुर की उपाधियों से विभूषित किया जाता था। आगा खान (नवाब ऑफ ढाका), नवाब मोहिसिन उलमुल्क, नवाब

वकर उल मुल्क, अहमदाबाद के राजा साहब, छत्तारी के नवाब साहब, सर सिकन्दर हयात खां, सर फिरोज खां नून, सर जुल्फिकार खान साहब, नवाब लियाकत अली खां आदि मुस्लिम लीग के बड़े नेता थे।

यही हाल हिन्दू महासभा का था। सभी सामंती तत्वों की भरमार थी। राजा रामपाल सिंह, राजा नरेन्द्र, सर गोकुल चन्द्र नारंग, राय बहादुर रामसरन दास, गणेशदत्त सर बी.एस. मुंजे आदि नेताओं की साम्राज्यपरस्त जगजाहिर थी।

बंटवारों के बाद पाकिस्तान में मुस्लिम लग की सरकार बनी थी। उसमें सामन्ती तत्वों के आधिपत्य को देखकर पसीना आता है। सोवियत लेखक गन्कोन्सकी और लेखिका गोर्दन पलोन्सकाया ने पाकिस्तानी जमींदारों के बारे में लिखा है, “पश्चिमी पंजाब के बड़े जमींदार मलिक फीरोज खां नून, मुश्ताक अहमद गुरमानरी, मियों मुमताज दौलताना, सैयद अहमद नवाबशाह गरदेजी, इफितखार हुसेन खां मामदौर और सिंघ के कुछ बड़े जमींदार जैसे मुहम्मद अयूब खुर्रो और गुलाम अली तालपुर पाकिस्तान की संविधान सभा, वहां की विधान सभाओं के सदस्य ही नहीं थे, वरन् केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों में मन्त्री बने हुए थे।”⁴

मुस्लिम सामन्त बिरादरी और मिल्लत के गीत गाते थे और शायद आज भी गाते हों, लेकिन उन्होंने मुस्लिम भूमिहीनों को दो बीघा जमीन नहीं दी थी और न आज दी हैं। पाकिस्तान में भूमि सुधार किस चिड़िया का नाम है, कोई नहीं जानता।

हिन्दू सम्प्रदायवादी अपने भूमिहीनों को जमीन देने की बात तो जहां तहां रही, रहें जिन्दा जलाने के कारनामे दिखाते रहते हैं। सामन्तवर्ग जो आमतौर पर साम्प्रदायिक है आज भी भूमि सुधारों का विरोधी है। भारत में साम्प्रदायिकता की जड़े वहां सबसे ज्यादा गहरी हैं, जहां सामन्तवादी दुर्ग मजबूत हैं। म.प्र., गुजरात,

राजस्थान और बिहार इसके उदाहरण हैं।

सम्प्रदायवादी अपनी मांगों को साम्प्रदायिक रूप में ही पेश करते थे। मुस्लिम लीग ने मुस्लिम बहुमत वाले प्रांतों में भी मुसलमानों के अधिक सीटों के आरक्षण की मांग तो रखी, लेकिन वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन की मांग पेश नहीं की। अगर वह यह मांग रखती तो मुस्लिम जनसंख्या के अनुपात में उन्हें अधिक सीटें खुद-व-खुद मिल जाती। उसने मुसलमानों के लिए शैक्षिक संस्थाओं की मांग तो पेश की लेकिन सबसे लिए शिक्षा की मांग पेश नहीं की। इसी साम्प्रदायिक सोच का नतीजा था कि मुहमद शफी और दूसरी साम्प्रदायिक नेताओं ने गोखले के 'प्राइमरी एजुकेशन बिल 1911' का विरोध किया।

सम्प्रदायवादियों ने किसी भी रूप में जनता की बुनियादी मांगों को नहीं उठाया। दोनों तरफ के सम्प्रदायवादी एक दूसरे द्वारा उत्पीड़ित किये जाने की शिकायत तो करते थे लेकिन जमींदारी को खत्म करने के लिए कोई मांग नहीं रखते थे। ऋण स्थगन, कृषि मजदूरों को बेहतर मजदूरी और शहरी कामगारों की मांगों को बिल्कुल नहीं उठाते थे। सैयद अहमद से लेकर जिन्ना तक ने उन मुस्लिम जुलाहों की मांगों को नहीं उठाया जो उपनिवेशवाद ने भयानक रूप से तबाह कर दिये थे। गांव के गरीबों ने जब उच्च वर्ग के विरुद्ध संघर्ष किया तो दोनों तरह के सम्प्रदायवादियों ने उसका डटकर विरोध किया।

सम्प्रदायवादियों ने मध्य एवं उच्च वर्ग के आर्थिक हितों की चिंता की तथा उपनिवेशवाद के साथ अपने रिश्तों को मजबूती प्रदान करने के लिए काम किया। मेहनतकश जनता उसके लिए तोप का चारा थी। मुस्लिम सम्प्रदायवाद ने मुस्लिम मेहनतकश अवाम की कीमत पर हिन्दुओं के विरुद्ध नौकरी और कौंसिल की सीटों पर कब्जा किया।

सम्प्रदायवाद प्रतिक्रियावाद का मंच होता है। तमाम प्रतिक्रियावादी विचारों

का समर्थन इस मंच से होता है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में सम्प्रदायवादियों विचारों का समर्थन इस मंच से होता है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में सम्प्रदायवादियों ने समस्त रेडीकल ताकतों का विरोध किया था। वे प्रगतिशील सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवर्तनों के विरोधी थे। जब भारत के लोग आधुनिक, वैज्ञानिक और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति को स्वीकार करने के प्रश्न पर वास्तविक समस्या का सामना कर रहे थे, तभी सम्प्रदायवादियों ने पुनरुत्थानवाद के बैनर से इसका तर्कहीन जेहादी विरोध किया। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और निम्न जातियों के तत्कालीन उभार का विरोध किया। हिन्दू सम्प्रदायवादी उच्च जातियों के थे और मुस्लिम सम्प्रदायवादी अजलाफ पर अशराफ के प्रभुत्व को सपोर्ट कर रहे थे।

सम्प्रदायवादियों ने हरेक उस सार्थक परिवर्तन का विरोध किया जो निहित स्वार्थों के आर्थिक ढांचे पर चोट करता था। हिंदू महासभा ने भूमि-सुधारों का विरोध ही नहीं किया, बल्कि सामंतों और पूंजीपति वर्ग की खुलकर वकालत भी की। उसने सूदखोर विरोधी कानून का भी विरोध किया जो किसानों और छोटे जमींदारों के लिए बहुत उपयोगी था। उसी प्रकार मुस्लिम लीग ने सामंत विरोध में हर कदम का विरोध किया। 1938 में कांग्रेस द्वारा रखे गये 'टेनेन्सी बिल' का लीग ने विरोध किया और बंगाल में 1937 से पहले कृषकप्रजा पार्टी (के० पी० पी०)के कृषि सुधार कार्यक्रम का विरोध किया और 1937 में के.पी.पी. के मुस्लिम लीग में विलय हो जाने पर के.पी.पी. के किसान समर्थक रेडिकल ग्रुप को लगभग अस्तित्व विहीन कर दिया। पंजाब में भी लीग ने बड़ी बेशर्मी के साथ सामंती तबकों का साथ दिया।

हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायवादी जनतंत्र और सामाजिक समानता के विरोधी थे। इनके मुताबिक जनतंत्र और सामाजिक-समानता का सिद्धान्त पश्चिमी विचारध

पारा है, जो भारतीय सामाजिक ढांचे के अनुरूप नहीं है। सैयद अहमद ने राष्ट्रवादियों की इस मांग का विरोध किया कि लैजिस्लेटिव कौंसिल में भारतीयों का प्रतिनिधित्व जनतांत्रिक निर्वाचन द्वारा होना चाहिए। सैयद अहमद ने तर्क दिया था कि इससे ऊंची हैसियत वाले मुस्लिम अशरफ घाटे में रहेंगे इसलिए इस समुदाय में से मनोयन ही मुनासिब होगा। चुनाव इस तबके की स्थिति को कमजोर कर देगा।

सैयद अहमद ने निम्न वर्गीय मुसलमानों के उच्च शिक्षा प्राप्त करने का विरोध किया। उन्होंने मुस्लिम समुदाय के उच्च वर्गीय व्यक्तियों को बिना किसी प्रतियोगिता के सरकारी नौकरियों में मनोनीत करने की मांग रखी थी और एक लम्बे अर्से तक यह होता भी रहा।

जनतंत्र के विरुद्ध मुख्य साम्प्रदायिक तर्क यह था कि बहुमत का शासन अल्पमत को प्रभावित करेगा। मुस्लिम साम्प्रदायिक नेतृत्व इस तर्क को राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दुओं की मुसलमानों पर स्थायी गुलामी के रूप में पेश करता था। सैयद अहमद ने 1883 में इम्पीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल में सेन्ट्रल प्रोविंसिस लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट बिल पर बोलते हुए यहां तक कहा था कि यह डेमोक्रेटिक पैटर्न हमारे यहां ठीक नहीं रहेगा क्योंकि यहां कई समुदाय और जातिया हैं। इंग्लैंड में इसकी प्रासंगिकता है क्योंकि वहां एक ही समुदाय है। आगे चलकर जिन्ना ने सैयद अहमद की थीसिस को ही आगे बढ़ाया था। उसका कहना था 'डैमोक्रेसी कैन ओनली मीन हिन्दू राज ऑल ओवर इंडिया।'

सम्प्रदायवादी साम्राज्यपरस्ती की पिनक में कुछ भी कह सकते और कुछ भी कर सकते थे। 1878 में सैयद अहमद ने लैटन के दमनकारी 'वर्नाक्यूलर एक्ट' का समर्थन किया। 1883 में उन्होंने मुसलमानों से 'इल्बर्ट बिल' का विरोध न करने की अपील की थी। ताज्जुब की बात है कि इस बिल का विरोध यूरोपियन

भी कर रहे थे।

सम्प्रदायवादियों ने किसान मजदूर जनता के हक में जाने वाली समाजवादी विचारधारा का विरोध किया। दोनों सम्प्रदायवादी कम्युनिज्म के घोर विरोधी थे। जिन्ना ने मुस्लिम सामंतवर्ग के भय को बढ़ाते हुए कहा कि कांग्रेस की नीति वर्गीय कड़ुवाहट को बढ़ावा देगी। जिन्ना ने चेतावनी दी थी कि कांग्रेस द्वारा की जाने वाली 'भूख और गरीबी की ये सब बातें इसका सूचक हैं कि लोगों को समाजवादी और साम्यवादी विचारों की ओर ले जायेंगी।' जिन्ना ने नेहरू को 'रेड पेन' चलाने का दोषी करार दिया था। हिन्दू महासभा ने वर्ग युद्ध से समाज को बचाने के लिए प्रतिज्ञा ली थी। 1938 में बी. एस. मुंजे ने नेहरू की ओर इंगित करते हुए कहा था कि कांग्रेस के अत्यधिक प्रसिद्ध नेता कम्युनिज्म के पक्ष में खड़े हैं।' हिन्दू महासभा कम्युनिज्म को 'आज के संसार के समक्ष सामाजिक और नैतिक रूप से सबसे बड़े खतरे' के रूप में देखती है। उन्होंने फरमाया था कि हिन्दू महासभा मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच 'बफर आर्गेनाइजेशन' का कार्य कर रही है। उसके एक तरफ खड़े हैं — 'मुस्लिम म्लेच्छ' तो दूसरी तरफ खड़े हैं 'कम्युनिस्ट राक्षस'।

सम्प्रदायवाद जन संघर्षों का विरोधी होता है। किसी भी साम्प्रदायिक पार्टी ने कभी कोई जन आंदोलन नहीं चलाया। 1916—1922 के छोटे से अर्से के बाद मुस्लिम लीग किसी भी आंदोलन में शरीक नहीं हुई। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने राष्ट्रीय जन संघर्ष मंच कांग्रेस का उसके जन्म से ही विरोध किया। सैयद अहमद ने कांग्रेस से मुसलमानों को अलग रखने के लिए कुरान का वास्ता दिया। मुस्लिम लीग का पहला जन आंदोलन कांग्रेस के ही खिलाफ था। दिसम्बर 1939 में कांग्रेस मंत्रिमंडलों के भंग होने की खुशी में 'मुक्ति दिवस' मनाया गया। मुस्लिम लीग का 1946—47 का 'डाइरेक्ट एक्शन' तो हिन्दूओं के ही खिलाफ था।

हिन्दू महासभा और आर. एस. एस. तो भूल से भी जन संघर्षों में शरीक नहीं हुए। इन संगठनों ने साम्राज्यवाद की अपेक्षा कांग्रेस और उसके नेताओं को अधिक गालियां दीं। सम्प्रदायवाद मध्यवर्ग अथवा पैटी बुर्जुआ वर्ग का वैचारिक हथियार है। सरकारी और गैर सरकारी नौकरियाँ पर आश्रित मध्यवर्ग (जॉबओरन्टिड मिडिल क्लास) में सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद और प्रांतवाद सशक्त रूप से जड़ जमाता है। एक दौर में जब मुस्लिम पैटी बुर्जुआजी ने सरकारी नौकरियों और दूसरे सरकारी प्रोफेशनों में बढ़त हासिल कर ली तो मुस्लिम समुदाय का यह वर्ग उसकी सुरक्षा में लगा, उसे यह खटका बना रहा कि कहीं हिन्दू एलीमेन्ट इन पर कब्जा न कर लें। दूसरी ओर हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए संघर्ष किया। आर्थिक क्षेत्र में हिन्दू डोमीनेंस को मुस्लिम सम्प्रदायवाद ने अपने अस्तित्व के लिए खतरा माना तो दूसरी ओर हिन्दू सम्प्रदायवाद ने इसे 'मुस्लिम थ्रैट' के रूप में लिया।

अतः सम्प्रदायवाद बुनियादी रूप में पैटी-बुर्जुआ विचारधारा है। यह विचारधारा वर्गीय पहचान को साम्प्रदायिक पहचान में विलीन करती है। और वर्ग-संघर्ष को साम्प्रदायिक संघर्ष के रूप में प्रतिबिम्बित करती है। यही सम्प्रदायवाद की विचारधारा का मूल है।

सम्प्रदायवाद उच्च वर्ग और औपनिवेशिक शासकों को एकताबद्ध करता है और मध्यवर्ग को अपने साथ जोड़ता है।

अतः सम्प्रदायवाद को विपिन चन्द्र के शब्दों में एक वाक्य में इस तरह व्यक्त किया जा सकता है— 'कम्प्युनलिङ्गम वाज दि आइडिओलॉजी ऑफ दि पैटी — बुर्जुआजी एट दि कमांड ऑफ इम्पीरियलिङ्गम एण्ड दि जागीरदारी एलीमेन्ट।' सम्प्रदायवाद पैटी बुर्जुआजी की विचारधारा थी जो साम्राज्यवाद और जागीरदारी तत्वों से कमांड होती थी।

साम्प्रदायिक प्रोपेगेंडा के कारण जनता अपने शोषण दमन और तकलीफों को समझने में असमर्थ थी और इन समस्याओं का कारण धर्म को समझने लगती थी।

सामाजिक-आर्थिक अंतर्विरोध तथा अंतर्द्वन्द्व सामाजिक विकास के दौरान विकृत रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं, तब वे कम्युनलकलर धारण करते हैं। प्रायः अधिकतर संपत्तिशाली और शोषक तबके उच्च जाति के हिन्दुओं से ताल्लुक रखते थे, जबकि गरीब और शोषित आमतौर पर मुसलमान और छोटी जाति के हिन्दू थे। इसलिए मुस्लिम सम्प्रदायवाद यह प्रोपेगेंडा करता था कि हिन्दू मुसलमानों का शोषण कर रहे हैं और दूसरी ओर हिन्दू सम्प्रदायवाद यह प्रचार करता था कि मुसलमान हिन्दुओं की संपत्ति और आर्थिक स्थिति को धमकियां दे रहे हैं। लेकिन यह सोच पूर्णतया गलत थी। दोनों तरह के सम्प्रदायवादी राजनीतिक एक जुटता के लिए एक कम्युनल लाइन का इस्तेमाल करते थे।

पूर्वी बंगाल के बड़े भाग में किसान और कर्जदार व्यक्ति मुस्लिम थे, जबकि जमींदार और सूदखोर व्यापारी हिन्दू थे। दोनों समुदाय के जमींदारों के कारिंदे नायब और एजेन्ट हिन्दू होते थे। रैयत सीधे हिन्दू नायबों के उत्पीड़न का शिकार होती थी। 1906 में मैमनसिंह के किसान आंदोलन ने और 1920 और 1930 के दशकों में मुस्लिम किसानों के संघर्ष ने साम्प्रदायिक रूप ले लिया था। 1921 के मोपला-किसान उभार को, जो जमींदारों और अंग्रेज अधिकारियों के विरुद्ध था, मुल्लाओं द्वारा उसे साम्प्रदायिक रूप दे दिया गया, क्योंकि किसान मुसलमान थे। और भूस्वामी और साहूकार हिन्दू थे।

पंजाब में भी स्थिति यही थी। तीनों तरह के सम्प्रदायवादी अपने भूस्वामी वर्गों के हितों की खातिर साम्प्रदायिकता का सहारा लेते थे।

किसानों के अतिरिक्त मजदूरों में भी फिरकारपरस्ती को इस आधार पर

पैदा किया जाता था। इसके लिए एक उदाहरण ही काफी है। 1929 में बंबई शहर का साम्प्रदायिक दंगा। यह दंगा हड़ताल करने वाले मजदूरों और हड़ताल तोड़ने वाले पठानों के द्वन्द्व से पैदा हुआ। दो तेल कम्पनियों में हड़ताल को तुड़वाने की खातिर स्ट्राइकब्रेकर्स के रूप में मालिकों ने पठानों का इस्तेमाल किया। इसके पीछे पठानों के प्रति मजदूरों की नफरत भी क्रियाशील थी। मजदूर सूदखोर पठानों के कर्जदार थे और पठान भी क्रूरतम स्तर तक सूद वसूल करने वालों के रूप में कुख्यात थे। अतः यह संघर्ष साम्प्रदायिक संघर्ष में बदल गया।

इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि जब शोसक और शोषित भिन्न समुदायों से संबन्धित होते हैं तब संघर्ष का स्वरूप कम्युनल कलर ले लेता है। जहां वर्गीय चेतना गैर हाजिर होती है, वहां आसानी से साम्प्रदायिक विचारधारा जड़ जमाती है।

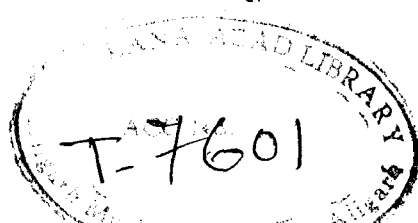
यही कारण है कि सम्प्रदायवादियों ने मेहनतकश जनता में वर्ग चेतना के अभाव का लाभ उठाया। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने मुस्लिम किसानों और कर्जदारों के शोषण की प्रकृति को वर्गीय आधार पर पेश नहीं किया। उन्होंने यह नहीं माना कि इनका शोषण किसान और कर्जदार होने के कारण होता है। बल्कि यह माना कि इनका शोषण मुसलमान होने के कारण होता है। 1936 में लाहौर में इस आशय का एक पम्फ्लैट बांटा गया, जिसमें लिखा था— दिनोंदिन मुसलमानों की गाढ़ी कमाई हिन्दुओं के हाथों में सिमटती जा रही है। मुसलमान जो भी कमाते हैं। उसे हिन्दू हड़प लेते हैं। इसलिये हिन्दू समुदाय मजबूत होता जा रहा है, दूसरी ओर जब किसानों के हित में कृषि ऋण रिलीफ एक्ट पास हुआ तो हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने इसे पंजाब और बंगाल में हिन्दुओं के ऊपर आक्रमण माना, भूस्वामियों और साहूकारों के ऊपर आक्रमण नहीं। उदाहरण के लिए 1924 में अमृतसर में एक हिन्दू साम्प्रदायिक जलसे में यह प्रस्ताव पास करके घोषणा

की गयी कि मनीलैंडर रजिस्ट्रेशन बिल हिन्दुओं के हितों के लिए घातक है। यह वैधानिक रूप से लागू होकर हिन्दू और सिख समुदायों को तबाह कर देगा।

बुनियादी रूप से सांप्रदायिकता औपनिवेशिक अर्थतंत्र की देन है। औपनिवेशिक दौर में शिक्षा व्यापार और उद्योग की पहुंच दूसरे भारतीय वर्गों खासकर हिन्दू-पारसी वर्गों की अपेक्षा मुस्लिम समुदाय में देर से हुई। आधुनिक प्रोफेशनलों और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मुस्लिम समुदाय कई दशक के अंतराल से पिछड़ गये। परिणाम स्वरूप समुदाय में आधुनिक सभ्यता का आगमन करीब अर्द्धशताब्दी की देरी से हुआ। इस देरी ने मुस्लिम सम्प्रदायवाद के विकास में अहं भूमिका निभाई।

इस सामाजिक और सांस्कृतिक विलम्बीकरण के निम्न कारण थे।

पूर्व ब्रिटिशकाल में उत्तरी भारत के उच्च वर्गीय मुस्लिम समुदाय का आर्थिक-सामाजिक ढांचा फ्यूडल था। जागीरदारी वर्ग मिलिट्री और उच्च सिविल ऐडमिनिस्ट्रेशन से जुड़ा था। जबकि हिन्दू समुदाय सिविल प्रशासन के निम्न सोपान पर थे और व्यापार तथा बैंकिंग में भी सक्रिय थे। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने पहले चरण में समस्त भारतीयों को आर्मी और सिविल प्रशासन के सभी उच्च पदों से वंचित और सभी निम्न पद सिपाही, चपरासी और क्लर्क, भारतीय समुदाय के लोगों के लिये रह गये। उच्च वर्ग जिसमें मुस्लिम समुदाय की संख्या ज्यादा थी इस बदलाब से फायदे में रहे, मध्यवर्गों ने अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने की खातिर आधुनिक शिक्षा पर ध्यान दिया, जबकि उच्च वर्ग अपनी हैसियत से महफूज नहीं रख सके क्योंकि उच्च सरकारी पदों का सेना और प्रशासन में यूरोपीकरण हुआ। उच्च वर्गों ने अपनी स्थिति को क्लर्की जैसे निम्न स्तर तक गिराना कुबूल नहीं किया, जबकि मध्य वर्गीय हिन्दू जो परम्परागत रूप



से इन्हीं पदों से जुड़े चले आ रहे थे, अपनी स्थिति से संतुष्ट हो गये। सिख उच्च वर्ग भी अपनी स्थिति को इन्हीं कारणों से पंजाब में गंवा बैठा। रवायती जागीरदार वर्ग ऐडमिनिस्ट्रेटिव पॉवर तक सीमित थे, जबकि साहूकार व्यापारी और बैंकर पूर्व ब्रिटिशकाल में आमतौर पर हिन्दू थे। इन नई परिस्थितियों में उनके हालात में बदलाव आया उनकी आर्थिक ताकत बढ़ी और वे जमींदारी में, लैंड लॉर्डशिप में, आधुनिक उद्योग तथा बैंकिंग में भी सक्रिय हुए।

ब्रिटिश उपनिवेश का प्रसार और प्रभाव भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न काल खंडों में हुआ। वे क्षेत्र जहां मुस्लिम आभिजात्य वर्ग का प्रभुत्व था, औपनिवेशिक अधिकार क्षेत्र में अपेक्षाकृत देर से आये।

परम्परागत मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग—उलमा 19 वीं सदी में खत्म होने लगा था। मुगलों के जमाने में यह वर्ग सरकारी अनुदान और रोजगार पर निर्भर था और उनसे न्यायाधीशों (काजी और मुफ्ती) का काम लिया जाता था। पुरानी शिक्षा प्रणाली के खत्म होने से मुस्लिम समाज में इनका अस्तित्व कमजोर हुआ।

मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग लैंडिड क्लासिज से पैदा हुआ था, जिसकी जहनियत कंजरवेटिव थी। वह शहरी व्यापारी, साहूकार और अधिकारी वर्ग से पैदा होने वाले आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग की तरह प्रोग्रेसिव नहीं था।

1857 के बाद ब्रिटिश नीति मुसलमानों को उत्तरी भारत में सरकारी पदों से वंचित करने की थी। यही वह समय है, जब आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग पैदा हो रहा था।

व्यापक स्तर पर प्रशासन और अदालतों से निम्न मध्यवर्ग के मुसलमान उनके पदों से उखाड़ दिये गये। फारसी के स्थान पर अंग्रेजी के दखल ने आर्मी और पुलिस में सेवारत और मुंशी क्लर्क जैसे पदों पर कार्यरत लोगों को जीवन उजड़ गया।

मुस्लिम पुनरुत्थानवाद के आधुनिकीकरण के विरोध के कारण रिनैसा का कार्य कमजोर रहा, जिसने आधुनिक मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग को प्रखर और रेडिकल नहीं होने दिया। यह दिलचस्प है कि मुस्लिम पुनरुत्थानवाद हिन्दू पुनरुत्थानवाद से आधी सदी पीछे था जो अत्यधिक पिछड़ा हुआ, अतीतोन्मुखी, कट्टर धर्मावलम्बी और हाइड-बाउण्ड था।

इस पुनरुत्थानवाद ने आधुनिक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का बहिष्कार किया। मुल्ला-मौलवियों ने धर्म के नाम पर मुसलमानों में आधुनिक-शिक्षा और संस्कृति का विरोध करने में पुराने सामंती तबकों की मदद की और उन्हें प्रोत्साहित किया। उन्होंने मुसलमानों से अपील की कि वे आधुनिक स्कूलों और कालेजों में प्रवेश न लें क्योंकि वे सेक्यूलर हैं। और अंग्रेजी तालीम अन-इस्लामिक है। अन्य समुदायों के व्यापार और प्रोफेशनल एलीट्स की अपेक्षा मुसलमानों में यह तबका बहुत कमजोर था। निम्न मध्य वर्ग के मुसलमानों की वह स्थिति नहीं थी कि वे स्कूल और कालेजों में ऊंची फीस अदा करके शिक्षा पा सकें या ग्रान्ट-ऐड-सिस्टम के तहत अपने तालीमी इदारे कायम कर सकें। मुस्लिम तुलुबा की परेशानियां बड़ी विकट थी। जब भी वे स्कूल कालेज पहुंचते तो हिन्दू-पारसी विद्यार्थियों की तुलना में वह विकलांग सिद्ध होते क्योंकि उनमें धार्मिक कट्टरता वाली रवायती तालीम लेने के कारण बैक वार्डनैस पैदा हो चुकी होती थी। दूसरे वे अरबी-फारसी अथवा बंगला-उर्दू पर जोर देने की वजह से तालीम में पिछड़ते गये। अंतिम कारण यह रहा कि 1920 के दशक तक कट्टरपंथियों ने स्त्री-शिक्षा का घोर विरोध किया। इसका नतीजा यह हुआ कि मुस्लिम समुदाय में आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग का उचित आविर्भाव नहीं हो पाया।

जब कलकत्ता, बम्बई और मद्रास यूनीवर्सिटियों से निकलने वाले बुद्धिजीवी तबके सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक सुधार के लिए चलाये जा रहे

आंदोलनों में महत्वपूर्ण भागीदारी कर रहे थे, तब अलीगढ़ स्कूल—नवाबों, जमींदारों, नौकरशाहों का समूह औपनिवेशिक शासन का समर्थन कर रहा था। मुस्लिम मध्यवर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग का सामंती वर्ग से गहन रिश्ता था और बड़े पैमाने पर उसका औपनिवेशिक नौकरशाहों से संबंध था। जब शिक्षित हिन्दू मध्यवर्ग का हिस्सा रेडीकल विचारों, रेशनलइज्म, समाजिक सुधारों, राष्ट्रवाद और जनतंत्र के लिए संघर्ष कर रहा था। लेकिन ठीक उसी समय मुस्लिम शिक्षित मध्यवर्ग साम्राज्यवादी संरक्षण में बड़े जमींदारों बड़े नौकरशाहों और कट्टर धर्मार्थियों की छत्रछाया में पल रहा था। इस वर्ग की महत्वाकांक्षाएं सरकारी नौकरियां प्राप्त करने तक थीं। अतः इस वर्ग की मानसिकता व्यूरोक्रेटिक थी। शिक्षित हिन्दू मध्यवर्ग ने राजनीति में नेतृत्व किया, जबकि शिक्षित मुस्लिम मध्यवर्ग ने सियासत के मैदान को जमींदारों और नौकरशाहों के लिए खुली छोड़ दिया। दिलचस्प बात तो यह है कि मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग ने जागीरदारी तबकों की बेदारी पर दिल तोड़ने वाले तराने गाये। हाली का 'मुसद्दस' और इकबाल का 'शिकवा' इसका प्रमाण है। जागीरदारों के 'एथॉस' को मुसलमानों का 'एथॉस' बना दिया गया।

चारों समुदायों (हिन्दू, मुस्लिम, सिख, पारसी) के व्यूरोक्रेट्स अंग्रेजों के वफादार, प्रतिक्रियावादी और आमतौर पर साम्प्रदायिक होते थे। हिन्दू-पारसी समुदाय में व्यूरोक्रेट्स का प्रभाव बहुत मामूली सा था। बल्कि इन समुदायों के उपनिवेशवाद विरोधी बुद्धिजीवी वर्ग का जनता पर व्यापक प्रभाव था। वे बुद्धिजीवी जो अपने युग में रेडीकल और अवाम परस्त थे, जैसे—दादा भाई नौरोजी, सरेन्द्र नाथ बनर्जी, तिलक, गोखले, तैय्यबजी, गांधी जी, आजाद, नेहरू, बोस आदि आदि का नता पर बहुत गहरा असर था।

19 वीं सदी के अंत और 20 वीं सदी के आरम्भ में, मुसलमानों में शिक्षितों की संख्या बहुत कम थी और जो कुछ भी शिक्षित तबका था, वह शीघ्र ही हिन्दू

—पारसी तबकों की अपेक्षा जल्दी ही, सरकारी नौकरियों में चाहे वह ब्रिटिश भारत की हों या प्रिंसली स्टेट्स की हों खपा लिया गया। मुसलमानों में ट्रेड और इंडस्ट्री का आकार बहुत कम था। नतीजन ब्यूरोक्रेट्स और पेंशन याफता एलीट्स ने मुस्लिम मध्य वर्ग में सामाजिक और राजनीतिक प्रभुत्व हासिल कर लिया और साम्राज्य परस्त सम्प्रदायवादी राजनीति का नेतृत्व किया।

औपनिवेशिक शोषण की प्रकृति को समझने में सम्प्रदायवादी असमर्थ थे। मुस्लिम सम्प्रदायवादी हिन्दू संपत्तिशाली वर्ग द्वारा किये जा रहे शोषण का रोना तो रोते थे, लेकिन उसकी वास्तविकता से नावाकिफ थे। यदि बहुत से क्षेत्रों में हिन्दू संपत्तिशाली वर्ग मुस्लिम जनता का शोषण करता था। तो वह हिन्दू होने के नाते ऐसा नहीं करता था। और न यह हिन्दू षड्यंत्र अथवा 'इच्छा' थी कि मुसलमानों को शासित अथवा शोषित किया जाय। वह आधिपत्य हिन्दू आधिपत्य का द्योतक नहीं था। उदाहरण के लिए हिन्दू जमींदारों का बंगाल में भूमि पर इजारा था। यह हिन्दू होने की वजह से नहीं था, बल्कि एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का नतीजा था। मध्यकाल में हिन्दूओं की छोटी जातियों और वर्गों ने इस्लाम को स्वीकार किया था, जबकि ऊंची जाति और उच्च वर्ग के हिन्दुओं ने ऐसा नहीं किया। बंगाल में मुस्लिम शासकों के जमाने में भी ग्रामीण क्षेत्र के स्थानीय शासक अधिकतर हिन्दू थे। हिन्दू जमींदार, व्यापारी, बैंकर, मुर्शिद कुली खां के जमाने में खूब समृद्ध हुए। कट्टर इस्लामी शासक औरंगजेब के जमाने में भी ये हिन्दु जमींदार व्यापारी और बैंकर उसके अनुयायी और अधिकारी थे। औरंगजेब के शासन में, पिछहतर फीसदी से अधिक जमींदार और उनमें से अधिकांश ताल्लुकेदार हिन्दु थे।

इसके अलावा स्थायी बंदोवस्त और औपनिवेशिक प्रभाव ने क्रमशः पुराने जमींदारों को खत्म और प्रायः तबाह कर दिया, जिनमें हिन्दु और मुसलमान दोनों

थे। फिर भी तबाह जमींदारों में हिन्दू जमींदारों का अनुपात अधिक था। लेकिन बंदोवस्त के दौरान जमीन नये व्यापारी समूहों के हाथों में गयी तो सभी के सभी हिन्दु थे। ये व्यापारी समुदाय मुस्लिम शासकों के जमाने से ही समृद्ध और असरदार थे। इस परिवर्तन में नया पहलू यह जुड़ा कि औपनिवेशिक शासन की प्रकृति और नीतियां उस व्यक्ति के अधिक पक्ष में थीं जो व्यापारी होने के साथ जमीन का भी मालिक हो। मुस्लिम जमींदारों के क्रमशः पतन का एक गौण कारण यह था कि उनकी जागीरें फीमेल उत्तराधिकार के सिद्धान्त पर विभाजित थीं। अपनी जमींदारियों का प्रबंध करने के लिए मुस्लिम जमींदार हिन्दू नायबों और डिप्टुओं पर आश्रित थे। यह भी दिलचस्प घटना है कि बंगाल रेंट बिल 1880-85 की चर्चा के दौरान बंगाल के सभी युवा राष्ट्रवादियों ने हलवाही किसानों का पक्ष लिया था। जबकि अधिकांश मुसलमानों ने जो हिन्दू जमींदारों के आधिपत्य के खिलाफ थे, जो मुस्लिम अवाम का नेता बनने का दम भरते थे और जिन्होंने आगे चलकर मुस्लिम सम्प्रदायवाद की राजनीति की शुरुआत भी की; इन उच्च वर्गीय मुस्लिम नेताओं ने या तो बिल का विरोध किया अथवा यथास्थिति के पक्ष में वोट दिया। यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि बंगाल और बिहार के सभी जमींदारों ने एकजुट होकर बिल का विरोध किया था।

व्यापार और सूदखोरी के कारोबार में हिन्दुओं की प्रधानता थी, खासतौर पर बंगाल और पंजाब में यह परिघटना मध्यकाल में ही घटित हो चुकी थी। तुर्की, ईरानी और मध्य एशिया के नोबल्स और सैनिक, जिनसे भारत के मुस्लिम उच्चवर्ग का गठन हुआ, उस समय की रूलिंग क्लास के डोमिनेंट सैक्शन थे। वे लोग औपनिवेशिक तन्त्र और पूंजीवादी भविष्य को देखने में असमर्थ रहे। इनका एकाधिकार प्रशासन और जमीन पर था। ये लोग व्यापार और बैंकिंग की ओर नहीं गये और इसलिए इनके यहां व्यापारिक बुर्जुआजी की परम्पराएं विकसित

नहीं हुई। इन्होंने अपनी स्थिति जमीन, प्रशासन और सेना में मजबूत करने की कोशिशें की। यही स्थिति 18 वीं और 19 वीं शताब्दी के दौरान सिख रूलिंग-एलीट की रही।

मुस्लिम समुदाय से शिल्पकार जातियां संबद्ध थीं। जबकि व्यापारी आमतौर पर हिन्दू थे। यह एक ऐसा तथ्य है कि जो औपनिवेशिक भारत में ही सही नहीं था बल्कि मध्यकाल में अथवा तथाकथित मुस्लिम काल में भी सही था।

यह सही नहीं है कि मुस्लिम उच्चवर्ग ने हिन्दुओं के आगे अपना आर्थिक आधार खो दिया था। उन्होंने अपना आर्थिक आधार खोया था, व्यापार और वित्त से जुड़े लोगों के सामने जो संयोग से हिन्दू थे; लेकिन हिन्दुओं को यह आधार सिर्फ हिन्दू होने की वजह से नहीं मिला था। यह औपनिवेशिक व्यवस्था की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों की देन था। औपनिवेशिक शोषण किसानों की लूट पर आधारित था। किसान हिन्दू साहूकारों के कर्ज के नीचे दबे थे। कर्ज की मुक्ति के लिए उनकी जमीनें सूदखोरों के हाथों आती गयीं। औपनिवेशिक शोषण ने कृषि उत्पादों का व्यापारीकरण किया जो हिन्दू व्यापारियों की दया पर आधारित था। यह औपनिवेशिक अर्थतन्त्र और कानूनी ढांचा ऐसा था जो भूस्वामियों और किसानों की अदालतों और हिन्दू व्यापारियों की दया पर छोड़ देता था। दूसरे शब्दों में जब औपनिवेशिक इतिहास व्यापारियों और सूदखोरों की आर्थिक बढ़त और प्रभुत्व की गारंटी कर रहा था तो मध्यकालीन इतिहास गारंटी कर चुका था कि ये व्यापारी आमतौर पर हिन्दू थे।

यह ऐतिहासिक स्थिति सम्प्रदायवादियों को लाभ पहुंचाने में सहायक सिद्ध हुई। सही सामाजिक और ऐतिहासिक समझ की गैर हाजिरी में मुस्लिम किसानों, कर्जदारों, कारीगरों और उत्पादकों ने सामान्यतया हिन्दू भूस्वामियों, साहूकारों, व्यापारियों और वकीलों को अपने शोषक और उत्पीड़क के रूप में

देखा। सामाजिक यथार्थ की सतही और बाघ दृष्टि के कारण वे औपनिवेशिक यथार्थ को, अपने उत्पीड़क वर्गों को, जो उपनिवेशवाद की पैदावार थे और एजेंट थे, देखने में असमर्थ रहे। निष्कर्षतः जब संप्रदायवादी शोषण हिन्दू स्वरूप पर बल देते थे तो मुस्लिम जनता उनसे असहमत नहीं हो पाती थी।

कुंठा और भय ये दो ऐसी मनोवैज्ञानिक ग्रथियां थीं, जिन्होंने सम्प्रदायवाद को बढ़ाने में अहं भूमिका अदा की।

आर्थिक और सामाजिक असुरक्षा भारतीय समाज के बहुत से तबकों में पैदा हुई— जिनमें जमींदार, किसान, मध्यवर्ग और कारीगरों के तबके मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। उपनिवेशवाद और नवोदित पूंजीवाद ने, सम्प्रदायवादी, जातिवादी, भाषायी आदि अविवेकपूर्ण विचारधाराओं की वृद्धि में सहायता प्रदान की। लोगों में एक अस्पष्ट पदच्युति का भाव पैदा हुआ। आर्थिक तंगी, कुंठा, असंतोष आदि ने लोगों में गुस्सा पैदा किया। लोग—बाग अनिश्चितता, असुरक्षा, गहरी चिंता के शिकार हुए, जो उन्हें अपने वर्तमान और भविष्य में दिखाई दे रही थी। उन्हें अपना अस्तित्व खतरे में नजर आ रहा था। 1930 और 1940 के दशकों में ये भावनाएं अपने चरम पर थीं। क्योंकि भयानक मंदी और द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न मुद्रास्फीति और राजनैतिक अनिश्चितता का माहौल इन्हीं दशकों में पैदा हुआ था।

इस स्थिति में मध्य वर्ग को काफी प्रभावित किया। उसे अपनी आर्थिक स्थिति सामाजिक स्तर खतरे में नजर आने लगे। उसे लगा कि उसकी अपनी अस्मिता दाव पर है। इस असामान्य माहौल में कुंठा, असुरक्षा, दुर्श्चिता ने अविश्वास, भय, दबी हुई हिंसा और घृणा को उभारा। मध्यवर्ग ने इस संकट से उबरने के लिए जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि के रूप में संगठित होना शुरू किया।

धार्मिक अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित मध्यवर्ग सम्प्रदायवाद की गहरी चपेट में आ गये। साम्प्रदायिक नेताओं ने इस स्थिति का लाभ उठाया। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने व्यवस्थित रूप से इस थीम को प्रचारित किया कि दुर्दमनीय बहुसंख्यक हिन्दू हमारी संस्कृति और हमारे धर्म को उखाड़ कर फेंक देंगे। यह थीम लम्बे अर्से से अस्तित्व में थी।

इस भय की अभिव्यक्ति के चंद नमूने उद्धृत हैं।

“मुसलमानों के अस्तित्व को गुलामी में पहुंचने तक की संभावना है और बहुसंख्यकों के अत्याचारों का भय है और अल्पसंख्यकों की अस्मिता के खत्म हो जाने का डर है।”⁵

“ब्रिटिश सरकार की मदद के बिना 7 करोड़ मुसलमान 23 करोड़ हिन्दुओं के द्वारा नष्ट कर दिये जायेंगे।”⁶

“कांग्रेस हाई कमान ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि दूसरे समुदायों और संस्कृतियों को खत्म कर दिया जाय और इस देश में हिन्दू राज की स्थापना कर दी जाय। गांधी जी का आदर्श हिन्दू राज की स्थापना है। कांग्रेसी इस स्कीम का अनुसरण करेंगे, जो मुसलमानों की मौलिकता और उसकी संस्कृति को नष्ट कर देगी।”⁷

“पाकिस्तान एक व्यावहारिक लक्ष्य नहीं है, लेकिन एक लक्ष्य है। यदि आप इस्लाम को सम्पूर्ण विनाश से बचाना चाहते हैं।”⁸

“भारतीय राष्ट्रवाद का तात्पर्य मुसलमानों की गुलामी है। इसका सीधा सा मतलब है – हिन्दुओं का संपूर्ण आधिपत्य और मुसलमानों का सम्पूर्ण विनाश।”⁹

हिन्दू सम्प्रदायवाद ने भी भय की थ्योरी को खूब उछाला। चंद नमूने द्रष्टव्य हैं—

“हिन्दू झुक जाने वाले कमजोर असंगठित और बिखरे हुए हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय मुसलमानों को अफगानिस्तान, ईरान और अरब से सहायता मिलती है। वे संख्या में बढ़ रहे हैं, तंदुरस्ती में बढ़ रहे हैं, एकता में बढ़ रहे हैं। हम टुकड़ों में बिखरे हैं। वे संयुक्त मुस्लिम विश्व की ओर देख रहे हैं। और हम अपने विनाश का इन्तजार कर रहे हैं।” ¹⁰

“अगर हिन्दू अब भी नहीं जागे तो वह खत्म हो जायेंगे।” ¹¹

“हिन्दुओं ने शुद्धि के अधिकार का प्रयोग नहीं किया तो दस दशकों में आप यह पायेंगे कि पृथ्वी पर कोई हिन्दु नहीं है।” ¹²

“हिन्दुओं को अहिंसा जैसे मिथ्या विचारों का परित्याग कर देना चाहिए। ये विचार मुसलमानों में उत्साह भरते हैं। मुसलमान हमारे अधिकारों में हस्तक्षेप करते हैं हमें हतोत्साहित करते हैं। और हमें नष्ट कर देना चाहते हैं।” ¹³

“मरती हुई जाति को खंडहर होने से बचाओ” ¹⁴

“हमारी अपनी भूमि पर हमारी हैसियत दासों की सी होती जा रही है। बंगाल और सीमा प्रांत में हमारी जिन्दगी, हमारी सम्पत्ति और हमारी इज्जत खतरे में है। हमारी महिलाओं की अस्मत् खतरे में है।” ¹⁵

“यदि अल्पसंख्यकों की मांगे स्वीकार कर ली जाती हैं तो हिन्दुओं का राष्ट्रीय जीवन चकनाचूर हो जायेगा। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का तात्पर्य अपने कट्टर दुश्मनों को अपनी छाती से चिपटाना है जो हमारे अस्तित्व के लिए खतरा है।” ¹⁶

“वे (कांग्रेस के नेता) मुसलमानों से यह कहने का साहस नहीं रखते कि वह अपने अलगाववाद को छोड़ दें। वे अपने उपदेशों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमानों के आज्ञाधीन बनकर उन्हें जमीन में दफन करना चाहते हैं। हिन्दुओं से कहा जाता है कि मुसलमानों द्वारा की गई बदमाशियों और अत्याचारों को भुला दें।

हिन्दुओं से कहा गया है कि वे अल्प बुद्धि हैं, उनमें कोई भावना नहीं है, उनमें अपने पैरों पर खड़े होने की ताकत नहीं है। उनमें यह शक्ति नहीं है कि वे अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए संघर्ष कर सकें और अपने रक्त में मुसलमानों के रक्त को शामिल होने से रोक सकें। वे जो यह घोषणा करते हैं कि हिन्दू मुस्लिम एकता के बिना स्वराज नहीं; अपने समाज के साथ घोर विश्वासघात करते हैं। वे अपने महान प्राचीन मानव की जीवन भावना को नष्ट करने का घोर अपराध कर रहे हैं।”¹⁷

उक्त कथन दोनों तरह की साम्प्रदायिकताओं के फासिस्ट चेहरे को बेनकाब करने के लिए पर्याप्त हैं।

साम्प्रदायिक दंगे आमतौर पर इस भय का परिणाम होते थे कि दूसरा पक्ष हमें समाप्त कर देगा या हमें अपने अधीन कर लेगा। गो-हत्या, मस्जिद के आगे संगीत, होली के अवसर पर रंग फेंके देना पीपल की डाल काट देना आदि ऐसे छोटे सवाल साम्प्रदायिक तनाव पैदा करते थे। क्योंकि वे भय ग्रंथि से भंयकर रूप से पीड़ित थे। ये सवाल आमतौर पर मध्यवर्ग की अस्मिता, अहंकार और असुरक्षा से पैदा होते थे। ये चीजें आधिपत्य का प्रतीक थीं। एक समुदाय अगर सहनशीलता दिखाता तो वह उसकी कमजोरी मानी जाती थी। अतः मध्य वर्ग अपने अहंकार के निर्माण में लगा रहता था। चुनौतियां देना, मौटिंग करना, अपनी ताकत, साहस और मर्दानगी का बखान करना, ये मध्यवर्ग की सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं बन जाती थीं। यह वर्ग अपनी अस्मिता के निर्माण के लिए इतिहास के कुछ काल खंडों का और कुछ नायकों का महिमा मंडल करता था। अन्तर केवल इतना था कि मध्यवर्गीय हिन्दू संप्रदायवादी अपना स्वर्णकाल और अपने नायक भारतीय इतिहास से निकालता था तो मुस्लिम संप्रदायवादी ऐतिहासिक इस्लाम का इस्तेमाल करते थे।

अल्पसंख्यकों में यह 'भय-ग्रंथि' जरूर पाई जाती है। उन्हें लगता है कि बहुसंख्यक उनकी सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को खत्म कर देंगे। यह भय ग्रंथि मध्यवर्गीय समुदायों में गहरी जड़ जमा लेती है।

मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने अल्पसंख्यकों के इस स्वाभाविक भय और कुंठा को निरन्तर बढ़ाया और घृणा में तब्दील कर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि राष्ट्रवादियों की स्वशासन और जनतंत्र की मांग अनिवार्यतः हिन्दुओं के स्थायी आधिपत्य को अपरिहार्य बना देगी। इसलिए मुसलमानों का भविष्य स्वतन्त्र और सुयुक्त भारत में अंधकार में विलीन हो जायेगा। स्थायी बहुसंख्यक वर्ग की ओर से उन्हें न्याय और समान व्यवहार नहीं मिलेगा। इतिहास से प्रमाणित है कि कुछ वर्षों तक मुस्लिम सम्प्रदायवादी अपनी खास जरूरतों और रियायतों के लिए लड़ते रहे और आगे चलकर यही मांग एक दिन पृथक राष्ट्र के रूप में आ खड़ी हुई।

बहुसंख्यक समुदाय की जिम्मेदारी बहुत बड़ी थी। इस भयग्रंथि को खत्म करने का इलाज यह था कि बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय न केवल शाब्दिक रूप से बल्कि अपने रोजमर्रा के व्यवहार से यह प्रमाणित करता कि अल्पमत का यह भय और अविश्वास आधारहीन है, जहां कहीं भी और जब कभी भी बहुमत के द्वारा यह किया जाता तो अल्पमत का भय और अविश्वास प्रायः कम होते होते खत्म हो जाता। यह कार्य राष्ट्रवादी नेतृत्व का था, जो ठोस रूप से और अधिकृत स्रोतों से अल्पमत की दुश्चिन्ताओं का विश्लेषण करते और इस मिथ्या चेतना के घटकों को अनावृत करके उन्हें वास्तविक चुनौतियों और स्थितियों को समझने में और अपने राजनीतिक अनुभवों से सीखने में उनकी मदद करते यह काम सिर्फ करना ही नहीं था, बल्कि उसका प्रदर्शन भी जरूरी था कि दोनों समुदायों के लोगों को ऐसा लगे कि उनकी दुश्चिन्ताओं, कुंठाओं, डरों का यह झूठा चेहरा

असली चेहरा नहीं है। बहुसंख्यक समुदाय को अपने ठोस क्रिया-कलापों से अल्पसंख्यकों को यह समझाना चाहिए था कि उनका धर्म और खासकर सामाजिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाज सुरक्षित रहेंगे और उनकी धार्मिक एवं राजनीतिक नीतियों को निर्धारित करते समय धर्म के फ़ैक्टर को आड़े नहीं आने दिया जायेगा।

हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने लगातार एक विपरीत भूमिका का निर्वाह किया। उन्होंने हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति घृणा फैलाई। उन्होंने हिन्दुओं की कायरता को कोसा, मुस्लिम प्रभुत्व का खतरा बताकर उन्हें डराया, और मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने की थ्योरी विकसित की। उन्होंने सक्रिय रूप से इस नीति का विरोध किया कि हिन्दुओं द्वारा अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देकर; हिन्दू अधिपत्य के मिथ्या भय को उनके मानस से निकाल फेंक देना चाहिए। निर्माणाधीन राष्ट्र की प्रक्रिया में अल्पमत को सक्रिय करने और प्रोत्साहन देने की बजाय हिन्दू सम्प्रदायवाद ने हिन्दुत्व, 'अल्पमत का हिन्दूकरण' और 'भारत हिन्दू राष्ट्र है' के सिद्धान्त को प्रचारित किया। इस तरह उन्होंने अल्पमत की भय-ग्रंथि को धनीभूत करके मुस्लिम सम्प्रदायवाद की विचारधारा और राजनीति को वैधता प्रदान की।

साम्प्रदायिकता के ज्वार को बढ़ाने में कांग्रेस का वर्ग-चरित्र भी जिम्मेदार था। कांग्रेस का नेतृत्व पूंजीवादी-भूस्वामी था। उसने सामंतवाद विरोधी संघर्ष को बढ़ने नहीं दिया और कहीं-कहीं तो जैसे पंजाब और बंगाल में, सामंती तत्वों का खुलकर समर्थन किया।

साम्प्रदायिकता औपनिवेशिक व्यवस्था की देन थी। सम्प्रदायवाद विरोधी संघर्ष ही उसे खत्म कर सकता था, लेकिन कांग्रेस ने सम्प्रदायवाद से निरन्तर समझौते करने की नीति का निर्वाह किया। नतीजन साम्प्रदायिकता का प्रेत

भारतीय समंतो और मध्यवर्गीय जनता के सिर पर मंडरता रहा।

सामंतवाद और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष ही साम्प्रदायिकता को खत्म कर सकता था। किसान-मजदूर जनता की रहनुमाई में ही संघर्ष परवान चढ़ता। कांग्रेस

पर पूंजीपति वर्ग का शिकंजा था और इतिहास ने कम्युनिस्टों को यह जिम्मेदारी सौंपी थी, लेकिन अपनी ऐतिहासिक कमजोरियों के कारण वे किसान-मजदूर जनता के संघर्ष को उरुज तक नहीं ले सके।

संदर्भ

1. इंडियन राउंड टेबुल कांग्रेस , प्रोसीडिंग्स, पृ. 138
2. उप. 158-59
3. एशियन ड्रामा, खंड-1, पृ. 309
4. गन्कोन्सकी - गोर्दन पलोन्सकाया-ए हिस्ट्री आफ पाकिस्तान, पृ. 114
5. वकार-उल-मुल्क-1907
6. मुस्लिम दर्पण आफ बंगाल, 1926
7. जिन्ना, 1938
8. जिन्ना , मार्च 1941
9. जेड. ए. सुलेरी-माई लीडर, पृ. 38
10. यू. एन. मुखर्जी - ए डाईग रेस, 1909
11. लालचन्द्र - दैनिक प्रताप, लाहौर, 1924
12. डा. कूर्त कोटि शंकराचार्य, 1924
13. लाला लाजपत राय , 1925

14. मदन मोहन मालवीय, 1926
15. सावरकर, 1938
16. गोलवलकर, 1939
17. गोलवलकर— बंच ऑफ थॉट्स, पृ. 150—52

अध्याय दो

भारत विभाजन और भारतीय मुसलमान

1930 के लीग के इलाहाबाद अधिवेशन में कविवर इकबाल ने अस्पष्ट रूप में एक पृथक मुस्लिम राज्य की स्थापना का विचार व्यक्त किया था तथा इसके बाद होने वाले गोलमेज सम्मेलनों में भी इसी प्रकार की बात उठायी गयी थी; लेकिन इन घटनाओं के बावजूद 1930-37 के काल में कांग्रेस और लीग साधारणतया वैधानिक क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ सहयोग करते रहे। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में विशेष रूप से कांग्रेस और लीग के बीच सहयोग की स्थिति थी और कांग्रेसी सदस्यों ने मि० जिन्ना के स्वर में स्वर मिलाकर 1935 के कानून की संघीय व्यवस्था की तीव्र आलोचना की थी। कांग्रेस और लीग के बीच इस सहयोग के कारण ही 1935 और उसके बाद 1936 में बजट अस्वीकृत हो गया और गवर्नर जनरल को अपनी विशेष शक्तियों के आधार पर बजट प्रमाणित करना पड़ा। श्रीराम शर्मा लिखते हैं कि, "इसके पूर्व कभी भी राष्ट्रवादी शक्तियों ने शासन पर ऐसा दबाव नहीं डाला था जैसा कि हिन्दु-मुस्लिम एकता के इस काल में देख गया।"

1937 के आम चुनावों में भी कांग्रेस और लीग के बीच अस्पष्ट-सामंजसता थी और इन चुनावों में कांग्रेस और लीग ने सरकार का संरक्षण और कृपा पाये हुए उम्मीदवारों के खिलाफ संयुक्त रूप से मोर्चा बनाया। दूसरों प्रान्तों की तुलना में कांग्रेस-लीग एकता संयुक्त प्रान्त में अधिक उभरी। संयुक्त प्रान्त

में वस्तुतः दो शक्तियों के बीच संघर्ष था। ब्रिटिश अधिकारियों ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों का विरोध करने तथा हिन्दू एवं मुस्लिम जमींदारों के बीच एकता स्थापित कर उन्हें समर्थन देने की नीति अपनायी। 'इस उद्देश से ' नेशनल एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी' की स्थापना करवायी और सरकारी अधिकारियों ने मुस्लिम तालुकेदारों और जमींदारों को मुस्लिम लीग से दूर कर 'एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी' का समर्थन करने के लिए प्रेरित किया और दबाव डाला।' ' कांग्रेस और लीग ने सरकार की कृपा प्राप्त इस पार्टी और अन्य प्रतिक्रियावादी उम्मीदवारों के खिलाफ संयुक्त रूप से चुनाव लड़ा था ।

1937 के चुनाव-परिणाम कांग्रेस और लीग के सम्बन्धों के लिए अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुए । इन चुनावों में 11 में से 6 प्रान्तों (बम्बई, मद्रास, मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसा) में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ था और दूसरे तीन प्रान्तों – असम, बंगाल और उत्तर – पश्चिमी सीमा प्रान्त में कांग्रेस सबसे बड़ा दल था । पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी ने बहुमत प्राप्त किया था। मुस्लिम लीग, जिसके द्वारा अपने आपको भारत के समस्त मुसलमानों का प्रतिनिधि कहा जाता था , को समस्त मुस्लिम मतों के केवल 4.8 प्रतिशत मत ही प्राप्त हुए थे । चुनाव परिणाम से ज्ञान हुआ कि मुसलमानों में लीग के अनुयायी नगण्य संख्या में हैं और कांग्रेस भारत के एक बहुत बड़े भाग में लोकप्रिय है । चुनाव विश्लेषण करते हुए नेहरू ने जनवरी 1937 में मि. जिन्ना को लिखा था—“अन्तिम विश्लेषण में भारत में दो ही शक्तियाँ हैं— अंग्रेजी साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रीयता की प्रतिनिधि कांग्रेस । मुस्लिम लीग मुसलमानों के एक छोटे से हिस्से – इसमें शक नहीं कि वे लब्धप्रतिष्ठ हैं की प्रतिनिधि है... मुस्लिम लीग का साधारण मुस्लिम जनता से कोई सम्पर्क नहीं है और निम्न मध्यम वर्ग से इसका बहुत थोड़ा सम्पर्क है।” चुनाव परिणाम से मुस्लिम लीग का निराश होना

स्वाभाविक था अतः मि. जिन्ना ने कांग्रेस के साथ मिलकर संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाने की इच्छा व्यक्त की । उन्होंने कहा था —“वस्तुतः इस समय कांग्रेस और लीग में किसी प्रकार का कोई सराभूत अन्तर नहीं है । हम कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम में सदैव सहर्ष सहयोग देंगे ।”² लीग विशेष रूप से संयुक्त प्रान्त में सत्ता में भागीदारी चाहती थी । कांग्रेस ने लीग को संयुक्त मन्त्रिमण्डल के निर्माण हेतु निमन्त्रित किया; लेकिन इसके साथ ही ये शर्तें लगा दीं—(1) मुस्लिम लीग गुट, एक पृथक् गुट की तरह काम करना बन्द कर देगा । (2) संयुक्त प्रान्त की विधान सभा में मुस्लिम लीग के जो वर्तमान सदस्य हैं वे कांग्रेस दल के भाग हो जायेंगे और उन्हें कांग्रेस दल का नियन्त्रण एवं अनुशासन मानना होगा । (3) संयुक्त प्रान्त का मुस्लिम लीग संसदीय बोर्ड भंग कर दिया जायेगा और भविष्य में इस बोर्ड द्वारा किसी भी उपनिर्वाचन में सदस्य खड़े नहीं किये जायेंगे । मुस्लिम लीग ने इन शर्तों पर जिनका अभिप्राय उनका विलीनीकरण था, सहयोग देने से इन्कार कर दिया । समझौता इस कारण भी नहीं हो सका कि लीग का आग्रह अपने दो सदस्यों को संयुक्त प्रान्त के मन्त्रिमण्डल में शामिल करने के लिए था, लेकिन कांग्रेस-लीग के केवल एक सदस्य को मन्त्रिमण्डल में लेना चाहती थी ।

सैद्धान्तिक दृष्टि से कांग्रेस द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण नितान्त उचित था क्योंकि कांग्रेस के पास काफी बहुमत था और वह लीगियों को इन शर्तों के अतिरिक्त अन्य किन्हीं शर्तों पर लेने को बाध्य नहीं थी । इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल के सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर कार्य करने के लिए भी उपर्युक्त शर्तें आवश्यक थीं, लेकिन व्यावहारिक कारणों से कांग्रेस का यह रुख हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में स्थायी कटुता का कारण बन गया । यह मि. जिन्ना का प्रत्यक्ष तिरस्कार था । इसलिए अब उन्होंने कहा — “मुसलमान कांग्रेस सरकार की अधीनता में न तो न्याय की आशा कर सकते हैं और न ही सबके

साथ समान व्यवहार की।”³ स्वयं पण्डित नेहरू स्वीकार करते हैं कि — “साम्प्रदायिक प्रश्न पर इस घटना के प्रभाव दुर्भाग्यपूर्ण थे और इसने काफी बड़ी संख्या में मुसलमानों में असन्तोष और पृथक्ता की भावना उत्पन्न कर दी।”⁴ कांग्रेस से निराश होकर मुस्लिम लीग ने कांग्रेस पर अपने आक्रमण दुगुने कर दिये तथा इसके और ऐसे ही मामले के बल पर इसने कांग्रेस पर ऐसे तानाशाही दल होने का आरोप लगाया, जो अल्पसंख्यकों पर छा जाना चाहती हो। सायमण्ड्स ने तो लिखा है कि — “पाकिस्तान के निर्माण में इससे अधिक और किसी एक घटना ने सहायता नहीं दी।”⁵ उपर्युक्त कथन अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकता है लेकिन उसमें सत्य का कुछ अंश अवश्य है।

एक और कारण, जिसने मुस्लिम लीग को और अधिक उत्तेजित किया, पं. नेहरू के नेतृत्व में चलाया गया कांग्रेस का जन सम्पर्क आंदोलन था। कांग्रेस ने इस बात पर बल दिया कि मुख्य समस्या साम्प्रदायिक नहीं वरन् आर्थिक है और मुस्लिम जनता का भाग्य भी कांग्रेस के ही साथ बंधा हुआ है। कुछ समय तक इस आंदोलन का प्रभाव कांग्रेस के अनुकूल रहा लेकिन मुस्लिम लीग ने इसे अपने अस्तित्व के लिए चुनौती समझा और शीघ्र ही इसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गयी। मि. जिन्ना के अनुसार इस आंदोलन का लक्ष्य मुसलमानों में फूट डालना, उन्हें दुर्बल करना और उन्हें अपने विश्वसनीय नेताओं से अलग करना था। लीग के पास कोई आर्थिक कार्यक्रम तो था नहीं; अतः उसने ‘तर्कहीन अपील की टेक्नीक’ का आश्रय लेते हुए ‘इस्लाम खतरे में हैं’ का नारा बुलन्द किया। इस समय परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की थीं कि मुस्लिम लीग का तेजी से उत्कर्ष प्रारम्भ हो गया। बड़े-बड़े मुसलमान जमींदार कांग्रेस की जमींदारी सम्बन्धी नीति से भयभीत थे। उन्हें भय था कि यदि सब कुछ जनता को दिया जाना है तो वह उनका बलिदान करके ही सम्भव है। इसलिए उन्होंने लीग की स्थिति दृढ़

करने में सहयोग दिया। मध्यम श्रेणी के मुसलमान भी अपने भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित थे। उन्होंने अनुभव किया कि वे उद्योग क्षेत्र, अन्य कार्यों तथा सार्वजनिक सेवाओं में हिन्दुओं के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकते। वे कांग्रेस की शिक्षा नीति से भी शंकित थे और उसे अपने सांस्कृतिक जीवन पर एक प्रहार समझते थे।

1937 से ही मूसलमानों में लीग का प्रभाव तेजी से बढ़ना प्रारम्भ हो गया तथा इसके साथ ही हिन्दू-मुस्लिम तनाव में भी निरन्तर वृद्धि होती रही। 1938 में होली और मुहर्रम के अवसरों पर सयुक्त प्रान्त और बिहार में सांप्रदायिक दंगे हुए। बनारस, इलाहाबाद, बाराबंकी, बांदा, गया, जबलपुर, भागलपुर तथा सैकड़ों ग्रामों में गम्भीर उपद्रव हुए, जो कभी-कभी तो कई दिनों तक चलते रहे। प्रत्येक घटना का गहन अध्ययन तथा जांच कियें बिना यह कहना नितान्त कठिन होता था कि दोनों सम्प्रदायों में से कौन उपद्रव के लिए उत्तरदायी था, किन्तु दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे को दोषी ठहरा रहे थे।

अब मुस्लिम जनता को और अधिक उत्तेजित करने के लिए लीग ने अपनी पूरी शक्ति के साथ हिन्दुओं के अत्याचारों का ढिंढोरा पीटना आरम्भ कर दिया। कांग्रेस को पद ग्रहण किये हुए कठिनाई से आठ महीने बीते होंगे कि मार्च 1938 में लीग ने पीरपुर के राजा की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की, जिसका उद्देश्य मुसलमानों, विशेषकर लीग के कार्यकर्ताओं पर किये गये अत्याचार की शिकायतों की जाँच करना था। 15 नवम्बर, 1938 को समिति ने मुसलमानों के कष्टों की एक लम्बी सूची के रूप में अपनी रिपोर्ट पेश की और निष्कर्ष निकाला कि 'बहुमत के अत्याचार से बढ़कर और कोई अत्याचार नहीं हो सकता।' 'पीरपुर रिपोर्ट' की तरह एक और रिपोर्ट जारी की गयी जिसे 'शरीफ रिपोर्ट' कहते हैं। इसमें भी साम्प्रदायिक भावनाओं को उत्तेजित करने वाली अनेक

बातें थीं। कांग्रेस ने आरोपों की निष्पक्ष जाँच का प्रस्ताव किया, लेकिन अपने आरोपों की असत्यता के कारण मुस्लिम लीग को यह बात स्वीकार्य हो नहीं सकती थी। कांग्रेस की ओर से डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने प्रस्ताव किया कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों पर साम्प्रदायिकता के जो आरोप लगाये जा रहे हैं उनकी जाँच संघीय न्यायलय के मुख्य न्यायाधीश सर मॉरिस ग्वायर से करवा ली जाय। उन परिस्थितियों में इससे अच्छा कोई प्रस्ताव नहीं हो सकता था क्योंकि सर मॉरिस की निष्पक्षता को सभी पक्ष स्वीकार करते थे, लेकिन लीग ने जाँच का यह स्पष्ट प्रस्ताव भी ठुकरा दिया। 'वस्तुतः रिपोर्ट (पीरपुर रिपोर्ट) का अधिकांश भाग लखनऊ के एक दैनिक के मुसलमान उपसम्पादक ने लखनऊ में बैठकर ही लिखा था।' ⁶ प्रो. कुपलैण्ड, जिन्हें किसी भी प्रकार कांग्रेस समर्थक नहीं कहा जा सकता, लिखते हैं कि "कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने साम्प्रदायिक अन्याय अथवा उत्पीड़न की नीति का बिल्कुल आश्रय नहीं लिया था।" ⁷ लेकिन लीग का आरोपों की सच्चाई से कोई सम्बन्ध नहीं था, उसे तो मुसलमान वर्ग का समर्थन प्राप्त करना था और इसमें उसे पूरी सफलता मिली। इन दुष्कर्मों के माध्यम से लीगियों ने मुसलमानों से कहा 'कि अगर तुम मुसलमान हो तो मुस्लिम लीग में आओ' और मुसलमान लीग में इस तहर आये, जैसे यह उनका धार्मिक कर्तव्य हों।' लीग की शक्ति में उत्कर्ष का प्रमाण यह था कि 1937 और 1942 के बीच जो 61 उप-निर्वाचन हुए, उनमें लीग ने 47 और कांग्रेस ने केवल 14 स्थान प्राप्त किये। मुसलमानों में श्री जिन्ना की प्रतिष्ठा 1927 से ही तेजी से बढ़नी प्रारम्भ हो गयी थी। श्री रामगोपाल लिखते हैं— "1937 और 1939 ई० के बीच मि० जिन्ना भारतवर्ष के सबसे बड़े मुसलमान नेता बन गये और उन्हें मुस्लिम लीग तथा मुसलमानों में वही स्थान प्राप्त हो गया जो कि गांधी को कांग्रेस और भारतीय जनता में प्राप्त था।"

इस प्रकार जब मुसलमान भारतीय राष्ट्रीयता के प्रवाह से अलग होने जा रहे थे, उसी प्रकार हिन्दू महासभा एवं अन्य कुछ हिन्दू संगठनों के नेतृत्व में हिन्दू जनता के एक भाग का रुख अधिकाधिक उग्र राष्ट्रवादी एवं लडाकू होता जा रहा था । हिन्दू महासभा 'हिन्दुत्व एवं हिन्दू राज' की बात पर बल दे रही थी । दिसम्बर 1937 में अहमदाबाद में हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन में सभा के अध्यक्ष विनायक दामोदर सावरकर ने घोषित किया कि इस संगठन का उद्देश्य 'हिन्दू जाति , हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू सभ्यता का अस्तित्व सुरक्षा एवं उन्नति तथा हिन्दू राष्ट्र के गौरव में वृद्धि करना है।' उन्होंने विशुद्ध हिन्दू राजनीति' अपनाने पर बल दिया तथा हिन्दुओं से कांग्रेस का बहिष्कार करने के लिए आग्रह किया ।

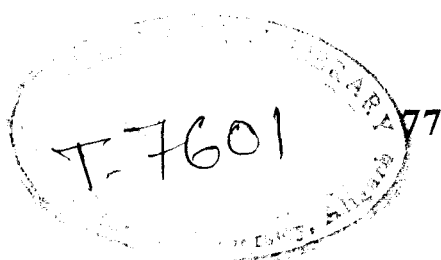
इसी समय आर्य समाज ने भी 'मुस्लिम कट्टरपन से हिन्दू सम्प्रदाय की रक्षा की बात कहना प्रारम्भ किया । हैदराबाद रियासत के शासक निजाम द्वारा जब हिन्दुओं पर अत्याचार के अनेक विवरण प्रकाशित हुए, तब आर्य समाज ने 1936 के लगभग निजाम के अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ किया। भारतीय मुसलमानों के एक भाग को निजाम से गहरा प्रेम और लगाव था, अतः इस सत्याग्रह से उनमें रोष फैला । इस प्रकार मुस्लिम साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया के रूप में जिस 'हिन्दू साम्प्रदायिकता' ने जन्म लिया था, उसने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काने का कार्य किया ।

साम्प्रदायिकता के इस वातावरण से गांधी, नेहरू, सुभाष, और कांग्रेस के अन्य नेता चिन्तित थे । इसके अतिरिक्त मुसलमानों में मुस्लिम लीग के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर अब उन्होंने लीग के महत्व को समझा और अनुभव किया कि जिन्ना तथा उनके साथियों के साथ समझौता किया जाना चाहिए । उन्होंने जिन्ना से सम्पर्क करके यह जानना चाहा कि लीग क्या चाहती है और उसके

वास्तविक उद्देश्य क्या हैं ? मई 1938 में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष बोस ने जिन्ना को अनेक पत्र भेजे, पर जिन्ना ने केवल यही उत्तर दिया, "...मुस्लिम लीग को भारत के मुसलमानों का प्राधिकारी एवं प्रतिनिधि संगठन स्वीकार करने के आधार के अतिरिक्त, अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के लिए कांग्रेस के साथ हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर वार्ता करना सम्भव नहीं है।" इसी प्रकार तब नेहरू ने भी जिन्ना को बार-बार पत्र लिखे, तब जिन्ना ने 9 अक्टूबर को कांग्रेस के सम्मुख ग्यारह मांगे प्रस्तुत कीं, जिनमें और बातों के अतिरिक्त यह भी था कि "कांग्रेस 'साम्प्रदायिक निर्णय'(1932) का विरोध करना त्याग दे, वन्दे मातरम् का गीत छोड़ दे; मुसलमानों की गौ हत्या में हस्तक्षेप न करे और इन सबसे अधिक, लीग को भारतीय मुसलमानों का एकमात्र प्राधिकारी एवं प्रतिनिधि संगठन स्वीकार करे।"

कांग्रेस के लिए इन माँगों को स्वीकार सम्भव नहीं था। जिन्ना के प्रस्ताव को मानने का आशय था, कांग्रेस अपनी मूलभूत प्रकृति और राष्ट्रीय स्वरूप का त्याग कर दे। सैकड़ों मुसलमान तथा मुस्लिम संगठन राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रवर्ती भाग ले चुके थे और अब जिन्ना चाहते थे कि उन सबको मुस्लिम लीग में धकेल दिया जाय, जो कि विशुद्ध साम्प्रदायिक दल था। जिन्ना ने जानबूझकर ऐसी माँगें की थीं, जिन्हें माना न जा सके। जिन्ना के इस पत्र से समझौते के सभी द्वार बन्द हो गये और मतभेद पहले से भी अधिक तीव्र हो गये। गांधीजी ने भी मतभेद दूर करने के प्रयत्न किये, किन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली।

1939 में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के युद्ध में शामिल किये जाने के विरोध-स्वरूप जब 8 प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्यागपत्र दे दिये गये, तो ब्रिटिश शासन और लार्ड लिनलिथगो ने स्पष्ट रूप से कांग्रेस का विराध करने और लीग को खुला समर्थन देने की नीति अपना ली। बिपन चन्द्र लिखते हैं,"



THRS

1937 तक ब्रिटिश सरकार की नीति ऐसी नियन्त्रित साम्प्रदायिकता की थी जिसमें ब्रिटिश सरकार को भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के बीच सन्तुलनकारी स्थिति प्राप्त रहे, लेकिन अब ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग को, विशेषतया कांग्रेस विरोधी भूमिका में खुला समर्थन देने की नीति अपना ली।”⁸ इस समय ब्रिटिश शासन का एकमात्र लक्ष्य युद्ध प्रयत्नों का सफलतापूर्वक संचालन करना था। जब कांग्रेस ने युद्ध प्रयत्नों में सहयोग देने से इंकार कर दिया था और जन आंदोलन की धमकी दी; तब ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की मांग का विरोध करने, भारतीय लोकमत को विभाजित करने और अधिकाधिक प्रान्तों में सामान्य प्रशासनिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए मुस्लिम लीग पर आश्रित रहने की नीति अपना ली। अब लीग को मुसलमानों की अधिकृत प्रवक्ता और एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मान लिया गया, सिद्धान्त रूप में उसकी पाकिस्तान की मांग को स्वीकार कर लिया गया और राजनीतिक समझौते पर निषेधाधिकार दे दिया गया। यदि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र नहीं देते तो ब्रिटिश सरकार लीग को ऐसा खुला समर्थन देने की नीति अपनाने का साहस नहीं कर सकती थी। इस आधार पर फ्रेंक मोरेस बी.पी.मेनन लिखते हैं कि कांग्रेस ने सत्ता से अलग हटकर गलती की।

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के त्यागपत्र से उत्पन्न स्थिति का मि.जिन्ना ने पूरा लाभ उठाने की कोशिश की। उन्होंने कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल पर 1938 की पीरपुर रिपोर्ट में लगाये गये आरोप दोहराये और भारत के मुसलमानों को 22 दिसम्बर, 1939 को ‘दोम-ए-नजात’ अर्थात् ‘मुक्ति दिवस’ (कांग्रेसी शासन के अत्याचारों से छूटकारे का दिन) मनाने का सुझाव दिया। गांधीजी ने जिन्ना से ऐसा न करने की अपील की, परन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। लीग और जिन्ना द्वारा अपनायी गयी धूर्तता की यह पराकाष्ठा थी। सुविज्ञ क्षेत्रों की राय है कि ‘जिन्ना द्वारा इस प्रकार का दृष्टिकोण वायसराय के प्रोत्साहन के आधार पर ही अपनाया

गया था । लीग की इस नीति के चाहे जो भी कारण हों यह नीति भारत राष्ट्र के लिए अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण थी ।

लीग द्वारा द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का प्रतिपादन और पाकिस्तान की माँग

लीग के द्वारा पाकिस्तान की माँग का अभिप्राय स्पष्टतः भूतकाल से सम्बन्ध विच्छेद था लेकिन यह ठीक ही कहा गया है कि पाकिस्तान लीग की राजनीति की तर्कता में विद्यमान था और यह लीग की पृथक्तावादी नीति का स्वाभाविक निष्कर्ष था । 1937 तक मुस्लिम लीग के द्वारा यह सब प्राप्त कर लिया गया था जो पृथक्तावादी प्रवृत्ति को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता था । लीग एक प्रतिक्रियावादी संस्था थी और उसके पास सामाजिक और आर्थिक सुधार का कोई कार्यक्रम नहीं था, फिर वह मुस्लिम जनता पर किस प्रकार अपना प्रभाव बनाये रखती । "पृथक् मत, पृथक् निर्वाचक मण्डल, पृथक् प्रान्त और रक्षा कवच सबकी माँग की जा चुकी थी और पूरी हो चुकी थी । अगला तर्कसंगत कदम पृथक् राज्य की माँग करना था । " पाकिस्तान की माँग चाहे तार्किक दृष्टि से मूर्खतापूर्ण, भौगोलिक दृष्टि से दुर्बल, आर्थिक दृष्टि से विनाशकर और अल्पसंख्यक वर्गों की समस्या के समाधान के रूप में सर्वथा अस्वीकार्य ही क्यों न रही हो, मुस्लिम लीग को शक्तिशाली बनाये रखने में समर्थ थी ।

साधारणतया सर मुहम्मद इकबाल को पाकिस्तान के विचार का जनक समझा जाता है । सन् 1930 की लीग के इलाहाबाद अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने घोषणा की थी कि "मुझे कम से कम उत्तर-पश्चिमी भारत के मुसलमानों का अन्तिम लक्ष्य एक पूर्ण उत्तर-पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का निर्माण प्रतीत होता है ।" किन्तु इकबाल मुसलमानों के लिए एक प्रभुता सम्पन्न

स्वतन्त्र राज्य के निर्माण के पक्ष में नहीं थे। कूपलैण्ड के मतानुसार, “इकबाल सम्पूर्ण भारत के लिए एक ढीले संघ के पक्ष में थे जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के द्वारा कुछ विशेष विषयों के सम्बन्ध में ही शक्ति का प्रयोग किया जाना था।” 1930 में ही उन्होंने एडवर्ड थाम्पसन से अपनी बातचीत में कहा था कि ‘पाकिस्तान की योजना ब्रिटिश सरकार, हिन्दू जाति तथा मुस्लिम जाति के लिए घातक होगी।

इतना होते हुए भी कैम्ब्रिज के मुलिम छात्र इकबाल के विचारों से प्रभावित हुए। 1933 में रहमतअली ने पाकिस्तान की स्थापना की एक योजना बनायी जिसमें पंजाब, कश्मीर, सिन्ध, बिलोचस्तान और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त सम्मिलित किये जाने थे। लेकिन जब यह योजना गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने वाले लीग के प्रतिनिधियों मि.जिन्ना और जफरुल्ला खां के समक्ष उपस्थित की गयी तो इन नेताओं ने योजना को ‘काल्पनिक और अव्यावहारिक’ बताया और इस प्रकार पाकिस्तान की योजना को उस समय तक कोई प्रोत्साहन नहीं मिला।

द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त

द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का आधार जॉन स्टुअर्ट मिल का यह विचार था कि ‘राज्य का क्षेत्र साधारण राष्ट्रीयता के क्षेत्र के अनुरूप होना चाहिए।’ भारतीय सन्दर्भ में द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का आशय यह था कि भारत में दो राष्ट्रीयताएं (हिन्दू और मुस्लिम) निवास करती हैं, अतः उन्हें दो राज्यों का रूप दिया जाना चाहिए। भारत के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना की मांग मि.जिन्ना, मुस्लिम लीग और लीग के अन्य नेताओं को 1933 में ‘काल्पनिक और अव्यावहारिक’ लगी थी लेकिन 1937 के अन्तिम दिनों में उन्होंने इस दिशा में पूरी गम्भीरता के साथ विचार करना और योजनाएं प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया था। जिन्ना के

सभापतित्व में सिन्ध प्रांतीय मुस्लिम लीग ने 10 अक्टूबर 1938 को घोषित किया कि, 'विशाल भारतीय प्रायद्वीप में स्थायी शान्ति के हित में तथा हिन्दू व मुसलमान नाम दोनों राष्ट्रों के निर्बाध सांस्कृतिक विकास, आर्थिक व सामाजिक उत्थान तथा राजनीतिक आत्म-निर्णय के हित में वह नितान्त अनिवार्य है कि भारत को दो पृथक संघों में विभाजित कर दिया जाय अर्थात् एक मुस्लिम राज्यों का संघ और दूसरा गैर मुस्लिम राज्यों का संघ। इसके शीघ्र पश्चात् लीग के दो नेताओं सैयद अब्दुल लतीफ व सर मुहम्मद शाहनवाज खां ने मुसलमानों के लिए पृथक राज्य की योजनाएं तैयार कीं। रहमत अली ने खुले तौर से कहना शुरू कर दिया, "हम हिन्दू नहीं मुसलमान हैं, हिन्दुस्तानी नहीं हैं, पाकिस्तानी हैं, भारतीय नहीं एशियाई हैं।" उन्होंने कहा कि मुस्लिम संघ में सिन्ध, पंजाब, बलूचिस्तान, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त व कश्मीर सम्मिलित किये जाये तथा उसका नाम पाकिस्तान हो। 1939 के प्रारम्भिक महीनों में मुसलमानों के लिए पृथक स्व-प्रदेश की मांग के लिए आंदोलन की योजना बनायी गयी। जुलाई 1939 में सर सिकन्दर हयात खां ने भी पाकिस्तान की एक योजना प्रकाशित की थी।

1939 में जब 8 प्रान्तों की कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्याग पत्र दे दिये, तो ब्रिटिश सरकार का लीग के प्रवृत्ति गहरा झुकाव हो गया। ऐसी स्थिति में लीग ने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि मुस्लिम लीग को भारत के समस्त मुसलमानों की प्रवक्ता और एकमात्र प्रतिनिधि संस्था माना जाय। अपने 17 अक्टूबर 1939 के वक्तव्य में वायसराय ने, चाहे परोक्ष रूप में ही सही लीग के भारतीय मुसलमानों की प्रवक्ता होने का दावा स्वीकार कर लिया। अतः अब जिन्ना और मुसलम लीग ने सोचा कि भारत के विभाजन और पकिस्तान की स्थापना की मांग विधिवत् रूप में प्रतिपादित करने के लिए उचित अवसर आ गया है।

द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का विधिवत् प्रतिपादन

द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का विधिवत् रूप में प्रतिपादन 1940 के मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में मि. जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में किया। उन्होंने कहा, “हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म शाब्दिक अर्थ नहीं हैं, वरन् ये दो पृथक और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। हिन्दू और मुसलमान संयुक्त रूप से एक राष्ट्र के रूप में रह सकते हैं, यह कोरा एक स्वप्न है। राष्ट्र की किसी भी परिभाषा के अनुसार मुसलमान एक राष्ट्र हैं, अतः उनका अपना प्रदेश तथा राज्य होना चाहिए।” अपने अध्यक्षीय भाषण में मि० जिन्ना ने घोषित किया कि, ‘भारतीय समस्या का समाधान भारत को दो स्वशासी राज्यों में बाँट देना है। मि० जिन्ना द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के आधार पर लीग के लाहौर अधिवेशन में ही पाकिस्तान की स्थापना सम्बन्धी प्रस्ताव रखा गया। इस प्रस्ताव की रूप रेखा प्रमुख रूप से फजल-उल-हक, सिकन्दर हयात खां व खलीक उज्जमाँ ने बनायी थी। इस प्रस्ताव को फजल-उल-हक ने रखा और खलीक उज्जमाँ ने इसका अनुमोदन किया। अधिवेशन में स्वीकृत इस प्रस्ताव में कहा गया था कि, “इस देश में कोई भी संवैधानिक योजना उस समय तक मुसलमानों को स्वीकृत नहीं होगी, जब तक कि उसमें भारत के पश्चिमोत्तर तथा पूर्वी क्षेत्र जैसे मुस्लिम बहुल प्रान्तों को मिलाकर एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में संगठित करने के विचार को स्वीकार न कर लिया जाय।” इसके कुछ ही दिनों बाद एसोसियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिका को एक भेंट में मि. जिन्ना ने बताया कि ‘पाकिस्तान एक जनतन्त्रात्मक संघीय राज्य होगा जिसमें पश्चिम में पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, बिलोचिस्तान, सिन्ध, पंजाब तथा पूर्व में बंगाल व आसाम सम्मिलित होंगे।’

मि. जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धान्त तथा लीग के पाकिस्तान प्रस्ताव में विभाजन की दिशा में सोचने वाली सभी शक्तियों को नया आधार मिला।

अलीगढ़ के मुहम्मद हुसैन कादरी और प्रो० जफरूल हुसैन ने दावा किया कि भारत के मुसलमान स्वतः एक राष्ट्र हैं। हिन्दुओं तथा गैर मुसलमान दलों से उनका राष्ट्रीय अस्तित्व सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः सूडान, जर्मन और चेको में जितना पार्थम्य था, उससे वही अधिक पार्थम्य हिन्दुओं तथा मुसलमानों में है।”

९ अलहमजा ने कहा कि ‘भारत एक देश नहीं है वरन् उसमें कई देश हैं और इसलिए उसे कई राष्ट्रों में विभक्त समझना चाहिए।’¹⁰

पाकिस्तान का प्रस्ताव का विरोध – मि. जिन्ना का द्विराष्ट्र सिद्धान्त सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से नितान्त त्रुटिपूर्ण था। सर्वप्रथम तो जैसे कि फ्रेडमान कहते हैं, ‘राष्ट्रीयता अब राज्य के लिए आधार प्रदान नहीं कर सकती।’ वस्तुतः सोवियत रूस और स्विटजरलैण्ड जैसे बहुराष्ट्रीय राज्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि एक संघीय राज्य के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रीयताएं शान्तिपूर्वक और अपने सांस्कृतिक जीवन को सुरक्षित रखते हुए निवास कर सकती हैं। मुस्लिम लीग समझाती थी कि पाकिस्तान का निर्माण अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा का श्रेष्ठ उपाय होगा। परन्तु यह धारणा दूरदशितापूर्ण नहीं थी। लीग ने कभी भी यह विचार नहीं किया कि पाकिस्तान की स्थापना के बाद भी भारत में कुछ मुसलमान और पाकिस्तान में कुछ गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यक रह जायेंगे और अल्पसंख्यकों की समस्या पहले से भीषण रूप धारण कर लेगी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार मुस्लिम लीग यह भूल गयी थी कि राष्ट्रीय राज्य तथा ‘राष्ट्रीय अल्पसंख्यक वर्ग’ दोनों में परस्पर विरोध होता है।’ लीग की इस पाकिस्तान योजना के सम्बन्ध में 15 अप्रैल, 1946 को मौलाना आजाद ने अपने एक वक्तव्य में ठीक ही कहा था कि – इस योजना पर सभी दृष्टिकोणों से विचार करने के बाद में इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यह केवल सम्पूर्ण भारत के लिए नहीं वरन् मुसलमानों के लिए विशेष रूप से

घातक है और यथार्थ में यह जितनी समस्याएँ सुलझाती है, उससे अधिक को जन्म देती है।¹¹ पाकिस्तान योजना के इन घातक प्रभावों के कारण ही न केवल कांग्रेस वरन् मुसलमान के ही एक वर्ग द्वारा इसका पर्याप्त विरोध किया गया। अखिल भारतीय स्वतन्त्र मुस्लिम सम्मेलन ने जिसका अधिवेशन खान बहादुर अल्लाहबख्श की अध्यक्षता में अप्रैल 1940 में दिल्ली में हुआ, पाकिस्तान योजना की तीव्र आलोचना की और कहा कि यह योजना 'मुसलमानों को एक पृथक्त्व निरोधयान में पटक देगा।'¹² जमीयत-उल-उलमा-ए-हिन्द भी पाकिस्तान की मांग की विरोधी थी और उसका कहना था कि 'राष्ट्रीय दृष्टि' से प्रत्येक मुसलमान भारतीय है।' मजलिस-ए-अहरार-ए-हिन्द, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के खुदाई खिदमतगार, बलूचिस्तान के राष्ट्रवादी मुसलमान अखिल भारतीय मोमिन सम्मेलन और शिया राजनीतिक सम्मेलन आदि कई मुस्लिम संस्थाएँ पाकिस्तान के विरुद्ध थीं। जहां तक अमुस्लिमों का सम्बन्ध है, उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि वे अपनी मातृभूमि की एकता को खण्डित करने वाले प्रत्येक का प्राण-पण से विरोध करेंगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि द्विराष्ट्र सिद्धान्त एक राजनीतिक मूर्खता थी, लेकिन दुर्भाग्यवश राजनीति के क्षेत्र में स्वार्थी राजनीतिज्ञ मूर्खताओं को अत्यन्त बुद्धिमत्ता से उपयोग करते हैं। भारतवर्ष में मि. जिन्ना और मुस्लिम लीग ने भी यही किया। मुस्लिम लीग अलग राष्ट्र के लिए अपनी मांग को दृढ़तापूर्वक अपनाये रही तथा जब कभी भी संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए कोई प्रयत्न किये गये, पाकिस्तान की मांग ने उन्हें हमेशा ही असफल कर दिया। इन असफल प्रयत्नों में क्रिप्स प्रस्ताव, राजगोपालाचारी योजना और केबिनेट योजना प्रमुख हैं।

मार्च 1942 के क्रिप्स प्रस्तावों में मुस्लिम लीग के पाकिस्तान सम्बन्धी दावे

को परोक्ष में स्वीकार कर लिया गया था उक्त प्रस्तावों के अनुसार, “यदि ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त नवीन संविधान को स्वीकार न करे तो वह अपना एक पृथक् अस्तित्व बनाये रख सकता था। नये विधान में सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों की यदि वह चाहेंगे तो सम्राट की सरकार पृथक् विधान देना स्वीकार कर लेगी तथा उनका पद भी पूर्ण रूप से संघ के समान होगा।” लेकिन श्री जिन्ना के अनुसार क्रिप्स प्रस्तावों में पाकिस्तान की कल्पना नितान्त अस्पष्ट थी और उसके पूरे होने में भी बाधाएँ थीं। लीग के इलाहाबाद अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए 4 अप्रैल 1942 को जिन्ना ने कहा था— “क्रिप्स प्रस्तावों में अल्पसंख्यकों को देश से अलग होने का जो अधिकार बताया जाता है, वह भ्रममात्र है क्योंकि सब प्रान्तों में हिन्दू बहुमत के कारण अखिल भारतीय संघ के पक्ष में फैसला हो जायगा और बंगाल के मुसलमान हिन्दू अल्पसंख्यकों की दया पर निर्भर होंगे क्योंकि वहां के हिन्दू हिन्दुस्तान के साथ रहने की पूरी कोशिश करेंगे।”

राजगोपालाचारी योजना (मार्च 1944)

क्रिप्स प्रस्तावों की विफलता के बाद अप्रैल 1942 में कांग्रेस कार्य समिति की जो बैठक हुई उसमें श्री राजगोपालाचारी ने खुले तौर पर मुस्लिम लीग के साथ पाकिस्तान के आधार पर समझौते का प्रस्ताव रखा। लेकिन कांग्रेस कार्य समिति ने राजाजी का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया अतः राजाजी कांग्रेस से अलग हो गये। राजाजी का विचार था कि क्योंकि, लीग पाकिस्तान के लिए हठ करती है तथा उसे अंग्रेजों की महानुभूति प्राप्त है अतः भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए लीग की मांग को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। सन् 1944 में गांधीजी की रिहाई के बाद उन्होंने कांग्रेस-लीग समझौते के आधार रूप में एक योजना बनायी जो राजगोपालाचारी योजना के नाम से प्रसिद्ध

है। इस योजना के अनुसार:

1. मुस्लिम लीग के लिए आवश्यक था कि वह भारत की स्वतन्त्रता की मांग से सहमति प्रकट करे तथा अन्तरिक सरकार की स्थापना में कांग्रेस के साथ सहयोग करे।

2. युद्धोपरान्त एक कमीशन की नियुक्ति हो जो उत्तर-पश्चिमी तथा पूर्वी भारत में उन जिलों को निर्दिष्ट करेगा, जहां मुसलमान बहुमत है। इन निर्दिष्ट क्षेत्रों के भाग्य का निर्णय जनमत संग्रह के आधार पर होगा। सीमान्त राज्यों को किसी भी राज्य में सम्मिलित होने की स्वाधीनता होगी।

3. जनमत संग्रह के पूर्व प्रत्येक दल को अपने पक्ष में प्रचार करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

4. विभाजन होने पर सुरक्षा, व्यापार तथा संचार साधनों के लिए परस्पर समझौता किया जायेगा।

5. जनसंख्या का आदान-प्रदान स्वैच्छिक आधार पर ही होगा।

6. उपयुक्त शर्तें ब्रिटेन द्वारा भारत को पूर्ण सत्ता उत्तरदायित्व प्रदान करने पर ही लागू होगी। जेल में रहते हुए ही गांधीजी ने इस बात को समझ लिया था कि भारत की राजनीतिक समस्या का हल हिन्दू-मुस्लिम सहयोग के आधार पर ही सम्भव है। अतः गांधीजी ने इस योजना के आधार पर मि. जिन्ना से बातचीत करने का प्रयत्न किया लेकिन मि. जिन्ना ने इसे 'अंगहीन कीड़े लगे हुए तथा दीमक खाये हुए पाकिस्तान तथा पाकिस्तान' तथा पाकिस्मान का उपहास कहकर इसे अस्वीकार कर दिया। वस्तुतः गांधीजी द्वारा मि. जिन्ना के सम्मुख इस प्रकार की योजना प्रस्तुत कये जाने से मि. जिन्ना की हठधर्मी में वृद्धि ही हुई।

पुनः गांधी जिन्ना वार्ता'

जुलाई-अगस्त में गांधीजी ने राजाजी द्वारा दिये सुझावों के आधार पर जिन्ना से पुनः पत्र व्यवहार किया, पर जिन्ना ने कोई वचन नहीं दिया। तब गांधीजी ने जिन्ना से भेंट करने का निश्चय किया और स्वयं उनसे मिलने बम्बई गये। मित्रतापूर्वक वातावरण में बड़ी स्पष्ट तार्का हुई किन्तु पाकिस्तान के प्रश्न पर वार्ता भंग हो गयी 18 अक्टूबर को जिन्ना ने घोषित किया: " हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों को दूर करने का केवल एक यथार्थवादी उपाय है कि भारत को दो प्रभुसत्ता भागों ; पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभाजित कर दिया जाय।" इस प्रकार जिन्ना के साथ मतभेद दूर करने लिए किया गया गांधीजी का प्रयत्न असफल रहा।

1944 में गांधीजी द्वारा मि. जिन्ना के साथ किये गये पत्र व्यवहार में गांधीजी ने मि. जिन्ना को 'कमद-ए-आजम अर्थात् एक महान नेता शब्द से सम्बोधित किया था। गांधीजी ने मि. जिन्ना को इस प्रकार जो सम्मान दिया था, वह गांधीजी की सहृदयता का परिणाम था। लेकिन गांधीजी द्वारा मि. जिन्ना को इस प्रकार सम्बोधित किये जाने से मि. जिन्ना के अहंभाव और उकनी हठधर्मी में और वृद्धि ही हुई। मौलाना आजाद ने गांधीजी की जिन्ना से भेंट और जिन्ना के प्रति अपनाये गये अत्यधिक सम्मान भाव को 'नितान्त अनौचित्यपूर्ण' बतलाया।¹³

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन

जून 1945 में महायुद्ध लगभग समाप्ति पर था और परिवर्तित परिस्थितियों के कारण ब्रिटिश सरकार भारत की राजनीतिक समस्या का समाधान करना चाहती थी। अतः वायसराय लॉर्ड वेवल ने 14 जून, 1945 को अपनी योजना प्रस्तुत की, जिसे 'वेवल योजना' के नाम से जाना जाता है। योजना में कहा गया

कि ब्रिटिश सरकार भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करना तथा उसे स्वशासन की ओर अग्रसर करना चाहती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रस्ताव है कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में वायसराय और प्रधान सेनापति को छोड़कर अन्य सभी सदस्य भारतीय जनता के प्रतिनिधि हों। इस कार्यकारिणी परिषद में सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर रखते हुए भारत के सभी प्रमुख सम्प्रदाओं को सन्तुलित प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।

शिमला सम्मेलन

वेवल योजना पर विचार करने के लिए उचित वातावरण के निर्माण हेतु 16 जून 1945 को कांग्रेस कार्यकारिणी के सभी सदस्यों और अन्य नेताओं को मुक्त कर दिया गया। सम्मेलन की कार्यवाही 25 जून 1945 ई० को प्रारम्भ हुई। सम्मेलन में कांग्रेस मुस्लिम लीग केन्द्रीय विधान सभा के योरोपियन दल और अन्य निमन्त्रित व्यक्तियों ने भाग लिया। सम्मेलन में कांग्रेस की ओर से मौलाना आजाद ने भाग लिया और इसमें कुल मिलाकर 22 सदस्य थे। सम्मेलन अत्यन्त आशामय वातावरण में प्रारम्भ हुआ था लेकिन शीघ्र ही साम्प्रदायिक मतभेद के कारण कार्यकारिणी के निर्माण पर कोई समझौता नहीं हो सका। मौलाना आजाद के कांग्रेस की ओर से कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों की जो सूची प्रस्तुत की, उसमें तीन मुस्लिम लीग के सदस्यों के साथ दो राष्ट्रीय मुसलमानों को भी सम्मिलित किया। मि. जिन्ना ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि मुस्लिम लीग ही मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। अतः कार्यकारिणी परिषद के पांचो मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग के ही प्रतिनिधि होने चाहिए और कांग्रेसी मुसलमानों का इसमें स्थान प्राप्त नहीं होना चाहिए। मि. जिन्ना के इस दावे को न केवल कांग्रेस वरन् पंजाब के मुख्यमंत्री मलिक खिज़्रहयात खं तिवाना ने भी

विरोध किया। कांग्रेस तो लीग और मि. जिन्ना के इस दावे को स्वीकार कर ही कैसे सकती थी क्योंकि इसे स्वीकार करने का अर्थ होता है कि कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है और केवल हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार जिन्ना की हठधर्मी से टकराकर वेवल योजना समाप्त की गयी। मि. जिन्ना ने केवल योजना को एक ऐसा 'जाल' बताया, जिसे स्वीकार करने से पाकिस्तान की प्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता।

सम्मेलन में साम्प्रदायिकता की समस्या हल नहीं हो सकने के कारण 14 जुलाई, 1945 को वायसराय ने सम्मेलन की असफलता की घोषणा कर दी। प्रत्यक्ष रूप में सम्मेलन की असफलता के लिए मुस्लिम लीग और उसके प्रतिनिधि। मि. जिन्ना ही दोषी थे। मौलाना आजाद के शब्दों में, "भारत के राजनीतिक इतिहास में शिमला सम्मलेन एक दुर्घटना है। यह प्रथम अवसर था जबकि वर्ता भारत और ब्रिटेन को बीच आधार भूत राजनीतिक प्रश्न पर नहीं वरन् विभिन्न भारतीय वर्गों को विभाजित करने वाले साम्प्रदायिक प्रश्न पर असफल हो गयी।"¹⁴ किन्तु ब्रिटिश सरकार और उसके प्रतिनिधि लॉर्ड वेवल को भी सम्मेलन की असफलता के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता। सम्मेलन के प्रारम्भ में वायसराय ने मौलाना आजाद से कहा था "सरकार द्वारा लीग के समर्थन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि लीग के नेताओं का ऐसा विचार है तो वे गलती पर हैं। सरकार तटस्थ है और बनी रहेगी।" लेकिन सम्मेलन की असफलता की जिस प्रकार से घोषणा की गयी, उससे यह नितान्त स्पष्ट था कि वायसराय ने अप्रयत्न रूप से लीग को इस तथाकथित उदार प्रस्ताव का अन्त करने में सहयोग दिया। "वायसराय लॉर्ड वेवल भी मुस्लिम लीग के दावे को अनुचित समझते थे, लेकिन उन्होंने यह कहकर कि यह एक ऐसा विषय है जिसका निर्णय कांग्रेस और लीग के द्वारा ही परस्पर कर लिया जाना चाहिए

और वे अपना निर्णय किसी पर थोपना नहीं चाहते, कोई सक्रिय कदम उठाने से इंकार कर दिया।" वायसराय का यह रुख कमजोरी और बहानेबाजी स्पष्ट करता है, इसलिए उन्हें भी सम्मेलन की असफलता के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता।

केबिनेट मिशन योजना

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर प्रान्तों में चुनाव हुए जिसमें लीग 495 मुस्लिम स्थानों में से 446 मुस्लिम स्थान प्राप्त करने में सफल रही। चुनाव परिणामों से मुसलमानों पर लीग का प्रभाव स्पष्ट हो गया था ब्रिटेन के नये प्रधानमंत्री एटली ने भारतीय समस्या के हल के लिए मार्च 1946 में केबिनेट मिशन भारत भेजा, जिसने 16 मार्च, 1946 को अपने प्रस्ताव प्रकाशित किये। मिशन ने लीग की पाकिस्तान सम्बन्धी मांग के विषय में कहा कि साम्प्रदायिक समस्या के लिए पाकिस्तान एक स्वीकार्य हल नहीं है। लेकिन इसके साथ ही लीग को सन्तुष्ट करना भी जरूरी था और इस हेतु प्रान्तों के समूहीकरण की व्यवस्था की गयी। 'प्रान्तों के समूहीकरण की यह व्यवस्था' केबिनेट योजना का अनिवार्य अंग थी और लीग ने इस बात के आधार पर ही 'केबिनेट योजना' को स्वीकार किया था। लेकिन कांग्रेस के कुछ नेता प्रान्तों के समूहीकरण को एक ऐच्छिक बात मानते थे। इसी प्रकार के दृष्टिकोण अपनाते हुए कांग्रेस के एक प्रमुख नेता पं. जवाहरलाल नेहरू ने 10 जुलाई, 1946 को बम्बई में एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि— "संविधान सभा में जाकर हम जो कुछ करेंगे उसके लिए पूर्ण स्वतन्त्र होंगे। बड़ी सम्भावना यह है कि प्रान्तों के इस प्रकार के कोई वर्ग नहीं बनेंगे।"¹⁵ पं. नेहरू का यह वक्तव्य 'अबुद्धिमत्तापूर्ण, अराजनीतिक और असामयिक' था और पं. नेहरू की आत्मकथा के लेखक माइकेल ब्रेचर ने भी 'इसे एक गम्भीर त्रुटि

माना है।' जिन्ना सदैव मुस्लिम लीग के पक्ष को मजबूत करने के लिए अवसर एवं बहानों की खोज में रहते थे, नेहरू की वक्तव्य से उन्हें ऐसा ही एक अवसर मिल गया। जिन्ना ने इस वक्तव्य पर शीघ्र ही अपनी प्रतिक्रिया दिखायी। उसने कहा कि लीग ने पाकिस्तान की मांग को छोड़कर भारी त्याग किया था, किन्तु कांग्रेस ने प्रान्तों के अनिवार्य समूहीकरण को नहीं माना है। कांग्रेस संविधान सभा में अपने बहुमत के बल पर मनमानी करना चाहती है, इसलिए मुस्लिम लीग इस योजना को अस्वीकार करती है। लीग के द्वारा संविधान सभा की बैठकों में भी भाग नहीं लिया गया और लीग के इस बहिष्कार के साथ ही केबिनेट योजना का अन्त हो गया। केबिनेट योजना का यह अन्त दुर्भाग्यपूर्ण था क्योंकि यदि इस योजना के आधार पर कार्य किया जाता तो भारत की एकता की रक्षा सम्भव न थी।

लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाही तथा साम्प्रदायिक उपद्रव

1945 तक जब संवैधानिक उपायों से लीग को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता नहीं मिली, तो लीग ने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए उत्तेजित करना प्रारम्भ कर दिया। कलकत्ता के समाचार पत्र 'दि स्टेट्समैन' के 15 अगस्त, 1946 के अंक में मुस्लिम लीग के एक प्रमुख नेता शाहिद सुहरावर्दी ने लिखा— "रक्तपात और अव्यवस्था अनिवार्य रूप से अपने आप में बुराई नहीं है, यदि इनका प्रयोग श्रेष्ठ लक्ष्य के लिए किया जाय। मुसलमानों के सम्मुख इस समय कोई भी लक्ष्य पाकिस्तान से श्रेष्ठतर नहीं हो सकता।" ¹⁶ यह और इस प्रकार के अन्य अनेक वक्तव्य मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए आह्वान थे और अब साधारण मुसलमान गली-कूचों में नारे लगाने लगे—'लड़कर लेंगे पाकिस्तान, बँट के रहेगा हिन्दुस्तान।'

मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त, 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' निश्चित किया। मुस्लिम लीग द्वारा लगाये गये इस प्रकार के नारों से कांग्रेसी नेता चिन्तित थे अतः 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' स्थगित कराने तथा 'अन्तरिम सरकार' बनाने में मुस्लिम लोग का सहयोग प्राप्त करने के लिए एक अन्तिम प्रयास के रूप में नेहरू ने 15 अगस्त को बम्बई में जिन्ना से भेंट की। किन्तु जिन्ना ने नेहरू की कोई बात नहीं मानी और 16 अगस्त को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' मनाया गया। बंगाल को लीग सरकार ने इस दिन सार्वजनिक छुट्टी कर दी। " इस दिन कलकत्ता और सिलहट में गम्भीर उपद्रव हुए और अकेले कलकत्ता के नरमेघ में लगभग 7,000 व्यक्ति मारे गये। हिंसा की आग पूर्वी बंगाल जा पहुंची। नोआखली और त्रिपुरा में जो अत्याचार और रक्तपात हुआ, उसने चारों ओर आतंक पैदा कर दिया।" फौज और पुलिस चुपचाप खड़ी नरसंहार देखती रही। मुख्यमंत्री सुहरावर्दी ने सेना को केवल उस समय सक्रिय होने का आदेश दिया, जब हिन्दुओं का पलड़ा भारी होने लगा। बंगाल में हिन्दुओं पर हुए इन अत्याचारों से सहस्रों परिवारों ने अपने घर-बार छोड़कर बिहार के हिन्दू बाहुल्य वाले प्रान्त में शरण ली। इन व्यक्तियों द्वारा अपने पर ढाये गये अत्याचारों के वर्णन से हिन्दुओं में बदले की भावना जागृत हुई। जब बिहार के कुछ क्षेत्रों तथा संयुक्त प्रान्त के गढ़मुक्तेश्वर तथा डासना में मुसलमानों के नरसंहार की स्थिति सामने आई। मुस्लिम साम्प्रदायिक तत्व हलाकू तथा चंगेजखां जैसे दिन फिर से लाने की धमकी दे रहे थे। अतः मेरठ, लाहौर और रावलपिण्डी में भी भीषण दंगे हुए। पंजाब और बंगाल की सरकारों ने तो उपद्रवों को दबाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। बम्बई और अहमदाबाद में छुरेवाजी और लूटपाट की कुछ घटनाएँ हुई।

इस स्थिति में महात्मा गांधी और कांग्रेस के अन्य नेताओं की आत्माएं सिहर उठीं। महात्मा गांधीजी 6 नवम्बर, 1946 को साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित

कराने पूर्वी बंगाल गये और नेहरू ने बिहार की यात्रा की । उच्च पदाधिकारियों तथा राजनीतिक दलों ने भी साम्प्रदायिक शान्ति का वातावरण स्थापित करने की अपीलें कीं, लेकिन साम्प्रदायिक अशान्ति का दौर चलता रहा। इस प्रकार के कानून भंग के वातावरण में 20 फरवरी ,1947 को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने घोषणा की कि ' ब्रिटिश सरकार जून 1948 के पूर्व ही भारतीयों के हाथों में शक्ति का हस्तान्तरण कर देगी।'

स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भारत के विभाजन का एकमात्र विकल्प गृहयुद्ध ही है। इस पृष्ठभूमि में 3 जून, 1947 को लॉर्ड माउण्टबेटन ने अपनी योजना पेश की जिसमें भारत तथा पाकिस्तान इन दो पृथक उपनिवेशों की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी। कांग्रेस सहित भारत के सभी वर्गों ने इस योजना को स्वीकार कर लेना ही बुद्धिमत्तापूर्ण समझा। इस योजना के आधार पर ब्रिटिश संसद ने जुलाई 1947 में ' भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम' स्वीकार किया। 14 अगस्त , 1947 को मि० जिन्ना को पाकिस्तान का गवर्नर जनरल घोषित कर दिया गया और इसी दिन पाकिस्तान ने एक वास्तविकता का रूप धारण कर लिया ।

परतन्त्रता काल में साम्प्रदायिक दंगे

19 वीं सदी तक हिन्दू और मुसलमान एक दुसरे के प्रति भाई – चारे की भावना के साथ रहते थे और 1857 में हिन्दू और मुसलमानों के द्वारा एक दुसरे के साथ सहयोग करते हुए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया था; लेकिन बीसवीं सदी के प्रारम्भ से परतन्त्रता काल की समाप्ति तक हिन्दुओं और मुसलमानों में परम्पर अनेक साम्प्रदायिक दंगे और उपद्रव हुए और 1947 में भारत के विभाजन का एक प्रमुख तत्व ये साम्प्रदायिक दंगे ही थे। भारत के

राष्ट्रीय नेता पहले भारत के विभाजन को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे, लेकिन साम्प्रदायिक दंगों की अनवरत श्रृंखला और निरपराध भोले व्यक्तियों के बहते हुए रक्त को देखकर उनकी विचारधारा परिवर्तित हो गयी और उन्होंने अखण्ड किन्तु अत्यधिक अशान्त भारत की अपेक्षा विभाजित किन्तु एक अपेक्षाकृत शान्त भारत श्रेयस्कर समझा। परतन्त्रता काल में साम्प्रदायिक दंगों और उपद्रवों के करणों की विवेचना निम्न प्रकार से की जा सकती है :

यह एक तथ्य है कि अंग्रेजी के आगमान के पूर्व भारत में हिन्दु और मुसलमान भाई-चारे की भावना के साथ रहते थे , लेकिन इस भाई-चारे में ऐसी कुछ कमियाँ अवश्य थी जिनका लाभ उठाकर अंग्रेजों के षड्यन्त्र के आधार पर इन दो जातियों के भाईचारे में न केवल दरार उत्पन्न की वरन् उन्हें एक दुसरे का विरोधी बना दिया। यदि साम्प्रदायिक दंगों के तात्कालिक कारणों का अध्ययन किया जाय तो यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि इनके कारण बहुत सामान्य होते थे; जैसे गौ-वध, मस्जिद के सामने बाजे , होली के अवसर पर रंग डालने को मामूली घटना , आदि यदि हिन्दु और मुसलमानों में सामाजिक जीवन के अन्तर्गत सम्बन्ध होते, तो मतभेदी के इन मामूली प्रश्नों को हल किया जा सकता था और छोटी मोटी घटनाओं में दोषी व्यक्ति को दण्ड देकर स्थिति को बिगडने से रोका जा सकता था। लेकिन यह वस्तुतः दुर्भाग्यपूर्ण ही था कि हिन्दुओं के द्वारा मुसलमानों के प्रति सामान्यतया ' मुझे मत छुना' का अपमानजनक व्यवहार किया जाता था तथा इन दोनों जातियों के बीच खानपान तथा विवाह सम्बन्ध का प्रचलन कतई नहीं था। मुसलमानों का अपने साथ ईसाइयों के व्यवहार की तुलना में हिन्दुओं का व्यवहार विशेषतया अपमानजनक प्रतीत होने लगा। अंग्रेजों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और इन सम्प्रदायों के बीच ऐसे मतभेद उत्पन्न कर दिये, जिन्होंने कालान्तर में साम्प्रदायिक उपद्रवों को जन्म

दिया। यदि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सामाजिक सम्बन्ध होते, तो सम्भवतया अंग्रेजों को अपनी कुचेष्टताओं में सफलता प्राप्त नहीं होती ।

राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग भारतीय राजनीति की दो बड़ी शक्तिया थी और जब लीग को कांग्रेस की तुलना में असफलता प्राप्त हुई तथा मुसलमानों ने भी जब बहुत बड़े पैमाने पर लीग का समर्थन नहीं किया, तो लीग ने मुस्लिम सहयोग प्राप्त करने के लिए झूठे और दूषित मजहबी प्रचार का आश्रय लिया। मुसलमान हिन्दुओं को 'काफिर' तो कहते ही थे, अब उन्होंने 'इस्लाम खतरे में है और काफिर का वध करना धार्मिक आदेश है' जैसी बातें कहनी शुरू कर दीं। भारत में अधिक साम्प्रदायिक दंगे 1940-47 के काल में हुए थे और इन दंगों का निश्चित रूप से एक प्रमुख कारण लीग का मजहबी प्रचार था। लीगी नेता अपने राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि के लिए किस प्रकार भोले और धर्मान्ध मुसलमानों को गुमराह कर रहे थे उसका एक उदाहरण लीग के प्रमुख नेता शाहिद सुहरावर्दी द्वारा कलकत्ता के समाचार पत्र के 5 अगस्त, 1946 के अंक में दिया गया वक्तव्य है—'रक्तपात और अव्यवस्था अनिवार्य रूप से अपने आप में बुराई नहीं है, यदि इनका प्रयोग श्रेष्ठ लक्ष्य के लिए किया जाय। मुसलमानों के लिए इस समय कोई भी लक्ष्य पाकिस्तान से श्रेष्ठतर नहीं हो सकता । " यह और इस प्रकार के अन्य अनेक वक्तव्य मुसलमानों का साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए आह्वान थे और इस मजहबी प्रचार के कारण मुसलमान गली कुँचों में नारे लगाने लगे , ' लड़ कर लेगे पाकिस्तान, बँटकर रहेगा हिन्दुस्तान।'

हिन्दू-मुस्लिम उपद्रवों के लिए कुछ अंशों में हिन्दू सम्प्रदाय और हिन्दू महासभा जैसे कतिपय संगठन भी दोषी कहे जा सकते हैं। यद्यपि इस्लाम और ईसाई धर्म के लोगों द्वारा हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करवाने का कार्य देखते हुए स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि कार्य का औचित्य बतलाया जा सकता है, लेकिन यह

तो मानना ही होगा कि इसने साम्प्रदायिक विद्वेष को जन्म दिया। 1925 के आसपास हिन्दुओं ने भी अत्यधिक धार्मिक उत्साह का परिचय देते हुए कुछ ऐसी पुस्तकें लिखी, जिनमें हजरत मोहम्मद पर आक्षेप किये गये थे। दो ऐसी पुस्तकें थी – रंगीला रसूल और रसीला वर्तमान। इन पुस्तकों के कारण और अधिक उत्तेजना फैली तथा अधिक दंगे, हत्याएँ और अग्निकाण्ड हुए। इस प्रकार 1937 और 1939 के हिन्दू महासभा के अधिवेशनों में अध्यक्ष श्री सावरकर ने बलपूर्वक कहा था – ‘भविष्य में हमारी राजनीति विशुद्ध हिन्दु राजनीति होगी।’ इन वक्तव्यों ने दोनों सम्प्रदायों में भय, सन्देह और अविश्वास को बढ़ाया और साम्प्रदायिक दंगे इसके ही परिणाम थे। लेकिन हिन्दू साम्प्रदायिकता मुस्लिम साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया ही थी और मूल रूप में साम्प्रदायिक दंगों के लिए मुस्लिम साम्प्रदायिकता को ही दोषी ठहराया जा सकता है।

परतन्त्रता काल में भारत के साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए सबसे प्रमुख उत्तरदायित्व ब्रिटिश शासन की नीति और कार्यों पर ही आकर पड़ता है। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद ब्रिटिश कुटनीति ने इस विचार को अपनाया कि भारत में अपने साम्राज्य की रक्षा करने के लिए हिन्दू और मुसलमानों के बीच फूट डालने की नीति अपनाई जानी चाहिए और इस नीति के अन्तर्गत 1906 में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और लीग की स्थापना का कार्य किया गया। अब यह सिद्ध हो चुका है कि इन कार्यों में पहल ब्रिटिश शासन ने की थी, भारतीय मुसलमानों ने नहीं। पृथक् प्रतिनिधित्व और पृथक् संगठन ने मुसलमानों में इस विचार को जन्म दिया और सुदृढ़ किया कि उनका नितान्त पृथक् अस्तित्व है और उनके ऐसे पृथक् हित हैं जिनकी प्राप्ति हिन्दू विरोध के आधार पर ही की जा सकती है। पाकिस्तान का विचार जिसने 1940 ई० के बाद बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक उपद्रवों को जन्म दिया, भी अंग्रेजों के उर्वरा मस्तिष्क की ही उपज

थी और उन्होंने ही मुस्लिम नेताओं के सामने बार बार विभिन्न आकर्षक रंगों में इसे प्रस्तुत किया। अंग्रेजों ने मानसिक स्तर पर मुसलमानों में पृथक्तावादी विचार उत्पन्न किया और साम्प्रदायिक दंगों आचरण के स्तर पर उसके स्वाभाविक परिणाम थे।

यह तथ्य है कि अपने समस्त दोषों के बावजूद ब्रिटिश प्रशासन कार्यकुशल था लेकिन एक दिलचस्प तथ्य यह है कि ब्रिटिश प्रशासन ने साम्प्रदायिक दंगों की रोकथाम के लिए उस चुस्ती और फुर्ती, उस सक्रियता और कुशलता का परिचय नहीं दिया जिसके लिए वह प्रसिद्ध था। 1905 से लेकर 1947 तक निरन्तर रूप से ब्रिटिश शासन ने साम्प्रदायिक उपद्रवों को अपने हितों के अनुकूल समझा और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इन्हें प्रोत्साहित किया। बंगाल में 1905 और 1910 के बीच जो उपद्रव हुए उनके सम्बन्ध में नेविन्सन ने लिखा: “मुल्ला लोग इस्लाम के पुनर्जीवन का उपदेश देने के लिए देश के भीतरी भागों में घूमने लगे थे और मुस्लिम जनता से कहते थे कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों की तरफ है, तीन महीनों के लिए कचहरियां बन्द कर दी गयी हैं; और जो लोग हिन्दुओं पर आक्रमण करेंगे, उनकी दुकानें लूटेंगे या हिन्दू विधवाओं को भगायेंगे उन्हें किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जायेगा। लाल रंग का एक विज्ञापन सब जगह बांटा गया, जिसमें इसी तरह के जंगली सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये थे।”¹⁷ बंगाल के लेफ्टिनेण्ट गर्वनर बैम्काइट फुलर ने मजाक के ढंग पर कुछ ऐसा ही संकेत किया: दो बीबियों में से मुसलमान बीबी मुझे अत्यधिक प्रिय हैं। इसके अतिरिक्त नेविन्सन का यह भी मत रहा कि “मुसलमानों को इस बात का सचमुच पूरा पूरा विश्वास था कि हम जो ज्यादाती करेंगे सरकार उसके लिए हमें अवश्य क्षमा कर देगी।”¹⁸

प्रशासनिक निष्क्रियता का एक अन्य उदाहरण रामगोपाल ने इस प्रकार

दिया है: “ 1910 में एक बार बंगाल की राजधानी तीन दिनों तक मुस्लिम हुल्लड़बाजों के अधिकार में रही और वे लोग शहर में जवाहरातों के व्यापारियों की दुकानें तीन रोज दिन-रात लूटते पाटते रहे। अधिकारी वर्ग बड़े मजे से इन घटनाओं का उल्लेख करते हुए कहता है कि यदि सरकार अपना हाथ खींच ले या ढीला कर दे तो हिन्दुओं की जैसी दुर्दशा हो सकती है, उसका कुछ आभास तो हिन्दुओं को मिल ही गया है। ” 19

श्री नेहरू, डॉ. प्रसाद और मौलाना आजाद सभी राष्ट्रीय नेताओं ने विचार व्यक्त किया है कि “ब्रिटिश सरकार ने कभी भी साम्प्रदायिक उपद्रव को दबाने में आवश्यक दिलचस्पी नहीं दिखायी। इन घटनाओं की जांच के लिए स्थापित जांच आयोगों ने भी उपद्रवों का एक प्रमुख कारण स्थिति सुधारने में पुलिस की निष्क्रियता और जान बूझकर अपनायी गयी उदासीनता था। शासन की रुचि इन उपद्रवों को दबाने के स्थान पर बढ़ा चढ़ाकर इनका बखान करने और इन्हें तूल देने में थी। संयुक्त प्रान्त के गवर्नर ने अपने विदाई भाषण में इस बात को अभिमानपूर्वक कहा था कि “अपने पांच वर्षों के शासनकाल में कम से कम उसे 83 साम्प्रदायिक उपद्रवों का सामना करना पड़ा था।” 20

परतन्त्रता काल में भारत के साम्प्रदायिक उपद्रवों की उपर्युक्त प्रकार से विवेचना की जाती है, लेकिन यह एक तथ्य है कि स्वतन्त्रता के बाद भी कुछ कम अधिक रूप में साम्प्रदायिक दंगे होते ही रहे हैं, भारत में कम और पाकिस्तान में अपेक्षाकृत भीषण रूप में। इसका तात्पर्य यह कि साम्प्रदायिक उपद्रवों के कारण अब भी बने हुए हैं और प्रशासनिक निष्क्रियता में वृद्धि ही हुई है, यद्यपि यह जान बूझकर अपनायी गयी निष्क्रियता के स्थान पर अकुशलता के परिणामस्वरूप उत्पन्न निष्क्रियता है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जन न केवल इस सत्य को समझें वरन् हृदयंगम कर लें कि जिन्हें साथ साथ रहना है, उनके द्वारा

सामाजिक जीवन में अपने आपको इतना अधिक एक कर लिया जाना चाहिए कि छोटी मोटी गलतफहमी या समाज विरोधी तत्वों की करतूतें कभी साम्प्रदायिक उपद्रव का कारण न बन सकें। आवश्यकता इस बात की है कि समस्त भारतीय जन अपने मन में झांककर देखें और उस भावना को निकालकर फेंक दें जो साम्प्रदायिक उपद्रवों का कारण बनती है।

भारत का विभाजन क्या वह अवश्यम्भावी था ?

1946 तक भी इस बात की आशा की जाती थी कि भारत की एकता की रक्षा की जा सकेगी। लेकिन 1947 में भारत के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण ने एक वास्तविकता का रूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार जिस आकस्मिक ढंग से भारत का विभाजन हुआ उसने इस सम्बन्ध में बहुत अधिक विवाद पूर्ण स्थिति को जन्म दे दिया। कुछ व्यक्तियों के समान ही मौलाना आजाद ने 1959 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में यह विचार व्यक्त किया कि भारत का विभाजन कभी भी आवश्यक नहीं था और नेहरू एवं पटेल जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी इच्छा से ही विभाजन के मार्ग को अपनाया। श्री आजाद लिखते हैं कि सर्वप्रथम नेहरू और पटेल ने लॉर्ड माउण्टबेटन के विचार को अपनाया और फिर इन्होंने कांग्रेस दल को भारत के विभाजन के पक्ष में किया। इसके विपरीत दूसरे व्यक्तियों का दावा है कि जुलाई 1947 और मार्च 1947 के बीच जो विविध घटनाएं घटित हुईं, उनके परिणामस्वरूप भारत का विभाजन अवश्यम्भावी हो गया था। भारतीय समस्या के हल का अन्य कोई विकल्प ही नहीं था।

गम्भीर विचार के उपरान्त द्वितीय विचार ही सत्य के अधिक समीप प्रतीत होता है। यह ठीक हो सकता है कि कांग्रेस नेताओं में सर्वप्रथम नेहरू और पटेल ने ही विभाजन के विचार को अपनाया हो लेकिन नेहरू और पटेल भी भारत के

अन्य राष्ट्रीय नेताओं के समान भारत की एकता को बनाये रखने के लिए दृढ़ संकल्प थे। इसके अतिरिक्त वे किसी भी दूसरे व्यक्ति की तुलना में देश की सम्पूर्ण स्थिति से अधिक अच्छी तरह परिचित थे। ऐसी स्थिति में परिस्थितियों के अत्यधिक दबाव के कारण ही उनके द्वारा विभाजन के मार्ग को अपनाया गया था। भारत का विभाजन नेहरू और पटेल का स्वैच्छिक निर्णय हो सकता है लेकिन यह निर्णय एक ऐसी स्थिति में किया गया निर्णय था, जबकि भारतीय समस्या के हल का अन्य कोई विकल्प ही नहीं था। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ठीक ही लिखते हैं “यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि उस समय अनिवार्य समझकर कांग्रेस के नेताओं ने विभाजन के साथ स्वाधीनता को स्वीकार किया। यदि वह स्वीकृति न देती तो क्या परिणाम होता इस प्रश्न का उत्तर इतिहास की सीमा से बाहर है।”²¹

भारत के विभाजन के लिए उत्तरदायी कारणों का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है।

(1) ब्रिटिश शासन द्वारा भारत में अपने साम्राज्य को बनाये रखने के लिए फूट डालो और राज्य करो की नीति का पालन किया गया था, उसके परिणामस्वरूप सदियों से एक दूसरे के साथ रहने वाली हिन्दू और मुसलमान जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ने लगे। अब यह बात एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकृत हो गयी है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रणेता लॉर्ड मिण्टो थे और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को इस पद्धति ने भारत के राष्ट्रीय जीवन में जिस विष का संचार किया उसकी चरम परिणति ही पाकिस्तान था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ‘खण्डित भारत’ में ठीक ही लिखते हैं कि ‘पाकिस्तान के निर्माता कवि इकबाल या मि. जिन्ना नहीं बरन् लॉर्ड मिण्टो थे।’

ब्रिटिश शासन ने भारत की इन जातियों के हृदय में एक दूसरे के प्रति

अविश्वास उत्पन्न किया और इस अविश्वास को बढ़ाया। मेहता और पटवर्धन के शब्दों में पाकिस्तान का विचार आंग्ल भारतीय नौकरशाही के लिए नया नहीं था।²² 1939 में एडवर्ड थामसनर ने विस्मय के साथ नोट किया था कि कतिपय सरकारी पदाधिकारी पाकिस्तान के विचार के प्रति बड़े उत्साही थे।²³ 1940 में लीग के द्वारा पाकिस्तान को अपना लक्ष्य घोषित करने के बाद लीग को ब्रिटिश शासन से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन मिला था। अनुदार दल के भारत सचिव मि० एमरी पाकिस्तान की मांग के प्रति गहरी सहानुभूति रखते थे और एक सार्वजनिक भाषण में उन्होंने कहा था, भारतीय स्वतन्त्रता के भावी आगार में कई भवनों के लिए स्थान है। श्री नेहरू, डॉ. प्रसाद और मौलाना आजाद सभी राष्ट्रीय नेताओं ने विचार व्यक्त किया है कि 'ब्रिटिश शासन ने कभी भी साम्प्रदायिक उपद्रवों को दबाने में आवश्यक दिलचस्पी नहीं दिखायी क्योंकि ये उपद्रव ब्रिटिश शासन की नीति के अनुरूप ही थे।'

(2) ब्रिटिश नीति ने हिन्दू मुसलमान सम्बन्धों को बिगड़ने में जो इतनी जल्दी सफलता प्राप्त की, उसका एक कारण यह था कि मुसलमान अपने प्रति हिन्दुओं के आम रवैये को बहुत बुरा महसूस करने लगे। वे समझते थे कि हिन्दुओं के 'मुझे मत छूना' रवैये का मतलब यह था कि हिन्दू मुसलमानों को अपने से छोटा समझते थे। मुसलमान हिन्दुओं के इस सामाजिक बहिष्कार के रवैये को सहन नहीं कर सकते थे। इस प्रकार हिन्दुओं की मुसलमानों के प्रति घृणा ने मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति घृणा उत्पन्न की और एक दुष्चक्र का निर्माण हो गया।

(3) पाकिस्तान की मांग के रूप में मुस्लिम पृथक्तावाद की पराकष्टा के लिए कुछ अंशों में हिन्दू सम्प्रदायवाद और हिन्दू महासभा जैसे कतिपय संगठन भी दोषी कहे जा सकते हैं। हिन्दू सभा अपने प्रारम्भिक चरणों में पण्डित मालवीय

और लाला लाजपतराय के नेतृत्व में कांग्रेस की सहायक राष्ट्रीय शक्ति थी; लेकिन 1930 के बाद कट्टरपंथी और प्रतिक्रियावादी तत्वों ने महासभा पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। 1937 के महासभा के अहमदाबाद अधिवेशन में श्री सावरकर ने कहा था, 'भारत एक और एक सूत्र में बंधा राष्ट्र नहीं माना जा सकता, अपितु यहां मुख्यतया दो हिन्दू और मुसलमान राष्ट्र हैं। 1939 में उन्होंने कहा, 'भविष्य में हमारी राजनीति विशुद्ध हिन्दू राजनीति होगी।' इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू सम्प्रदायवाद मुस्लिम पृथक्तावाद की प्रतिक्रिया ही था। उसने स्वयं तो साम्प्रदायिक कलह की आग नहीं फूँकी, लेकिन उसकी ज्वालाओं को अवश्यक ऊँचा रखा और मुसलमान को पाकिस्तान की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

(4) अनेक विचारकों का मत है कि लीग के प्रति व्यवहार में कांग्रेस की कुछ भयंकर भूलें ही भारत के विभाजन के लिए उत्तरदायी थीं। कांग्रेस की प्रारम्भिक भूल अपने सिद्धान्तों के मूल्यों पर 1916 में लीग के साथ समझौता करना था। 1919 में असहयोग के प्रश्न को खिलाफत के साथ मिलाने और 1932 में साम्प्रदायिक निर्णय के प्रति उसके दृष्टिकोण ने भी मुस्लिम पृथक्तावाद को प्रोत्साहित ही किया। डॉ. लालबहादुर के अनुसार— "कांग्रेस ने लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति को अपनाया। इस प्रकार न चाहते हुए भी उसे निरन्तर बढ़ते हुए दावे करने के लिए प्रेरित किया। मुसलमानों को खुश करने की उत्सुकता में इसने अपने सिद्धान्तों की बलि दे दी।" ²⁴

लीग के प्रति कांग्रेस की नीति में संगतता का भी अभाव था। 1911 से 1935 तक कांग्रेस ने लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनायी थी; लेकिन 1937 में जबकि सम्भवतः तुष्टीकरण नीति का परिणाम अच्छा होता उसने लीग के प्रति व्यावहारिक के स्थान पर वैधानिक और कठोर दृष्टिकोण अपना लिया; जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस और लीग के बीच स्थायी कटुता ने जन्म ले लिया। 1938

में कांग्रेस का जन सम्पर्क आंदोलन भी इसी प्रकार की एक भूल थी जिसने लीग को नव जीवन प्रदान किया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अनजाने में कांग्रेस के अनेक कार्यों का परिणाम लीग का उत्कर्ष हुआ।

(5) भारत के राष्ट्रीय नेता ब्रिटिश साम्राज्यवाद को दूर करने के लिए कृतसंकल्प थे, अतः उन्होंने कुछ अधिक मूल्य पर भी मि. जिन्ना के साथ समझौता कर लेना उचित समझा। लेकिन मि. जिन्ना प्रारम्भ से ही स्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाने पर तुले हुए थे और बाद में तो उनकी जिद और धूर्तता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी। तीन संशोधनों से चौदह मांगे और चौदह मांगों से पाकिस्तान उनकी इस प्रवृत्ति का अच्छा परिचायक था। न तो वे राष्ट्रीय नेताओं के साथ सहयोग के लिए तैयार थे और न ही किसी भी ऐसी योजना को स्वीकार करने के पक्ष में थे जो उनकी कल्पना के पाकिस्तान को पूरे पूरे रूप में प्रदान न करता हो। 1940 के बाद भारत की राजनीतिक समस्या के समाधान हेतु राजगोपालाचारी योजना, वेवल योजना और कैबिनेट योजना के रूप में अनेक प्रयत्न किये गये। लेकिन जिन्ना की हठ के कारण इनमें से किसी में सफलता नहीं मिली। उन्होंने दावा किया कि लीग मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है और प्रत्यक्ष कार्यवाही के रूप में राजनीति में अराजकता को आमंत्रित किया। जिन्ना की इस हठधर्मी के कारण राष्ट्रीय शक्तियों के सम्मुख पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रहा।

(6) यदि किसी एक तत्व को पाकिस्तान निर्माण के लिए उत्तरदायी कहा जा सकता है तो वह है 1946-47 के साम्प्रदायिक दंगे और उपद्रव। जब संवैधानिक साधनों से लीग को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता नहीं मिली तो लीग ने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए उत्तेजित किया। 16 अगस्त 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस पर कलकत्ता में 7000 व्यक्ति मारे गये। इसी

प्रकार की घटनाएँ नोआखाली और त्रिपुरा में हुईं जिनकी प्रतिक्रिया हुई बिहार और गढ़मुक्तेश्वर में और साम्प्रदायिक दंगों का चरमोत्कर्ष देखा गया। पंजाब में मुसलामनों ने हलाकू तथा चंगेज खां के दिन फिर से लाने की धमकी दी और इस दिशा में कोई कसर भी न उठा रखी। साम्प्रदायिक समस्या के सम्बन्ध में कांग्रेस के दृष्टिकोण में परिवर्तन इन उपद्रवों के कारण ही हुआ था। इसका प्रमाण तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष थी कृपलानी का वह भाषण है जो उन्होंने 15 जून 1947 को दिया। उन्होंने कहा था “मैंने एक कुआं देखा है जिसमें 107 स्त्री बच्चों ने अपनी इज्जत बचाने के लिए छलांग लगाकर जान दे दी। एक दूसरी जगह एक धर्म स्थान में पुरुषों ने 50 स्त्रियों का इसी कारण अपने हाथों बध कर डाला। मैंने एक घर में हड्डियों के ढेर देखे हैं जिसमें आक्रमणकारियों ने 307 व्यक्तियों को बन्द कर जिन्दा जला डाला था। इन भयानक दृश्यों को देखकर इस समस्या के सम्बन्ध में मेरे विचार पर बहुत प्रभाव पड़ा है और अन्य अनेक व्यक्तियों के समान मैं यह सोचने लगा हूँ कि विभाजन ही इस समस्या का एक मात्र विकल्प है।”²⁵

(7) इस तथ्य के कारण कि मुसलमानों का एक भाग भारत में अलग होने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था, अन्त में यह सोचा गया कि बाध्य एकता न तो वांछनीय है और न ही उसके लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए। दबाव के आधार पर गठित संघ न तो स्थायी हो सकता था और न ही प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया के अनुकूल था। इसके अतिरिक्त संघ में इन अवांछित तत्वों की उपस्थिति भारत के दीर्घकालीन हितों की दृष्टि से लाभदायक नहीं थी। नेहरू ने अपने साथियों से स्पष्टता कहा था— “यदि उन्हें भारत में रहने के लिए बाध्य किया गया तो प्रगति और नियोजन नितान्त असम्भव हो जायेंगे।” 15 जून 1947 की कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में सरदार पटेल ने यही विचार इस प्रकार व्यक्त किया था “यदि एक अंगूठा

विषपूर्ण हो जाय तो उसे अलग कर देना चाहिए अन्यथा सम्पूर्ण शरीर को अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता है।”²⁶

(8) 15 अक्टूबर 1946 को अन्तरिम सरकार का पुर्नगठन कर उसमें लीग के पांच सदस्यों को सम्मिलित किया गया। लीग अन्तरिम सरकार में कांग्रेस के साथ सहयोग करने के लिए नहीं वरन् पग पग पर बाधाएं डालने हेतु ही इसमें सम्मिलित हुई थी और लीग की इस नीति के परिणामस्वरूप अन्तरिम सरकार कांग्रेस और लीग के संघर्ष का नवीन केन्द्र बन गयी। मुख्य बाधा वित्त सदस्य लियाकत अली की ओर से उपस्थित हुई और कांग्रेसी मन्त्रियों ने पाया कि वे लियाकत अली की स्वीकृति के बिना एक चपरासी की नियुक्ति भी नहीं कर सकते हैं। इस स्थिति ने शासन को पंगु बना दिया और कांग्रेसी नेताओं ने सोच लिया कि लीग के साथ सहयोग का प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। अन्तरिम सरकार में अपने अनुभव के आधार पर ही बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में सरदार पटेल ने कहा था— ‘मैं सोचता हूँ कि यदि हमने विभाजन स्वीकार नहीं किया तो भारतवर्ष कई टुकड़ों में बटकर पूर्ण नष्ट हो जायेगा। एक वर्ष के मेरे प्रशासकीय अनुभव ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि हम विनाश की ओर बढ़ रहे हैं।’

(9) 1929 में कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया था और उसके बाद के 18 वर्षों में भारतीय जनता और ब्रिटिश शासन के सम्बन्ध नितान्त कटुतापूर्ण थे। अत्यधिक आशावादी ब्रिटिश व्यक्ति भी 1942-45 में यह नहीं सोच सकते थे कि भारत स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्र मण्डल का सदस्य रहेगा। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन ने यह सोचा कि यदि स्वतन्त्र भारत अमैत्रीपूर्ण भारत होता है तो भारत को निर्बल कर देना ही हितकर है। पाकिस्तान का निर्माण भारत को निर्बल कर देगा और भारत उपमहाद्वीप के ये दो अंग एक दूसरे के विरुद्ध लड़ते रहेंगे।

कहना न होगा कि भारत और पाकिस्तान ने ब्रिटेन की इच्छाओं को पूरा भी किया।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने प्रत्येक स्थिति में जून 1948 के पूर्व भारत को स्वाधीनता देने की घोषण की थी ऐसी स्थिति में कांग्रेस ने सोचा कि माउण्टबेटन योजना स्वीकार करने पर ब्रिटिश सरकार इससे भी हानिकारक कोई दूसरी व्यवस्था कर सकती है। 1956 में पं. नेहरू ने माइकेल ब्रेचर को कहा था— “पीछे देखने पर मैं सोचता हूँ कि यदि विभाजन के एक वर्ष या अठारह माह पूर्व ब्रिटिश सरकार की नीतिज कुछ दूसरी होती तो विभाजन को टाला जा सकता था।” ²⁷

(10) 1947 के भय और तनाव के वातावरण में भी आशा की एक किरण थी कि भारत का विभाजन अस्थायी होगा। अनेक कांग्रेसी नेताओं का विचार था कि राजनीतिक, भौगोलिक, आर्थिक और सैनिक दृष्टि से पाकिस्तान एक स्थायी राज्य नहीं हो सकता और आज अलग होने वाले ये क्षेत्र देर सबेर से फिर भारतीय संघ में सम्मिलित हो जायेंगे। इस प्रकार की आशा व्यक्त करते हुए ही तत्कालीन अध्यक्ष कृपलानी ने कांग्रेस के सम्मुख कहा था— “भारत की एकता का कार्य भारत को सुदृढ़ सुखी, गणतन्त्रात्मक और समाज सत्तावादी राज्य बनाकर किया जा सकता है। इस प्रकार का भारत अपने बिछुड़े बच्चों को फिर अपनी गोद में बिठा सकता है। भारत की एकता के बिना उसकी स्वतन्त्रता अधूरी ही रहेगी।” ²⁸ ऐसा लगता है कि पाकिस्तान की स्थिरता में सन्देह के कारण राष्ट्रवादी तत्वों ने भारतीय समस्या के अस्थायी हल के रूप में पाकिस्तान को स्वीकार कर लिया। लेकिन 1947 की यह आशा यथार्थ का रूप ग्रहण न कर सकी।

(11) ब्रिटिश भारत के अन्तिम और स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर लॉर्ड माउण्टबेटन का प्रभाव भी कांग्रेस द्वारा विभाजन प्रस्ताव स्वीकार कर लेने के लिए

उत्तरदायी था। लॉर्ड माउण्टबेटन अपने राजनीति चातुर्य अत्यधिक शिष्ट व्यवहार एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के आधार पर सरदार पटेल को विभाजन की वांछनीयता समझाने में सफल रहे। इसके बाद उन्होंने नेहरू के सम्मुख अपना दृष्टिकोण रखा और धीरे-धीरे नेहरू का विभाजन विरोध समाप्त हो गया। मौलाना के अनुसार – “ लॉर्ड माउण्टबेटन के भारत आने के एक माह के अन्दर पाकिस्तान के दृढ़ विरोधी नेहरू विभाजन के समर्थन नहीं तो कम से कम इसके प्रति तटस्थ हो गये। इस कठिन कार्य में लॉर्ड माउण्टबेटन को अपनी आदर्श पत्नी से बहुत सहायता मिली जिन्होंने नेहरू को अपने पति से अधिक प्रभावित किया।” ²⁹

(12) 1944 में जब राजगोपालाचारी योजना के आधार पर महात्मा गांधी मि. जिन्ना से मिले थे तो जिन्ना ने इसे ‘कटा छंटा और दीमक लगा पाकिस्तान’ कहकर इसे अस्वीकार कर दिया था और माउण्टबेटन योजना के द्वारा मि. जिन्ना को यह ‘कट-छटा पाकिस्तान’ ही दिया जा रहा था। इसलिए भारतीय जनमत इसे स्वीकार कर लेने के पक्ष में था। माउण्टबेटन योजना में बंगाल और पंजाब के विभाजन की भी व्यवस्था की गयी थी जिससे इन प्रान्तों के हिन्दू और सिक्खों को भेदभाव से बचाया जा सकता था। इन सबके अतिरिक्त सत्ता के प्रति आकर्षण भी कांग्रेस द्वारा विभाजन योजना स्वीकार किए जाने का एक कारण था। माइकेल ब्रेचर के अनुसार, “कांग्रेसी नेताओं के सम्मुख सत्ता के प्रति आकर्षण भी था। इन नेताओं ने अपने राजनीतिक जीवन का अधिकांश भाग ब्रिटिश विरोध में बिताया था और अब वे स्वाभाविक रूप से सत्ता के प्रति आकर्षित हो रहे थे। कांग्रेसी नेता सत्ता का आस्वादन कर चुके थे और विलय की घड़ी में इससे अलग होने के इच्छुक नहीं थे।” ³⁰

उपर्युक्त कारणों ने भारतीय इतिहास की महानतम दुर्घटना भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया। महात्मा गांधी के शब्दों में यह एक आध्यात्मिक

दुर्घटना और 32 वर्षों के सत्याग्रह का लज्जाजनक परिणाम था।

मि. जिन्ना द्वारा द्विराष्ट्र सिद्धान्त का प्रतिपादन और 1947 में भारत का विभाजन धार्मिक आधार पर किया गया था लेकिन बाद की घटनाओं ने स्पष्ट कर दिया कि धार्मिक आधार पर निर्मित राज्य स्थायी नहीं हो सकता। 1971 में पाकिस्तान का पुनर्विभाजन और स्वाधीन बंगला गणतन्त्र की स्थापना मि. जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धान्त पर एक व्यंग्य है।

संदर्भ

1. विपिन चन्द्र— आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, पृ. 253
2. एच. एच. सयैद— मोहम्मद अली जिन्ना, पृ. 559
3. कॉपलैंड— इंडिया ए रेस्टेटमेन्ट, पृ. 183
4. जवाहरलाल नेहरू— द डिसकवरी ऑफ इन्डिया, पृ. 391
5. साइमंड्स— द मेकिंग ऑफ पाकिस्तान, पृ. 53
6. राम गोपाल— भारतीय राजनीति, पृ. 411
7. कॉपलैंड— इंडिया ए रेस्टेटमेन्ट, पृ. 185
8. विपिन चन्द्र— आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, पृ. 256
9. डा. राजेन्द्र प्रसाद— खंडित भारत, पृ. 02
10. अलहमजा—पाकिस्तान, ए नेशन, पृ. 07
11. मौलाना आजाद— इन्डिया विंग्स फ्रीडम, पृ. 142
12. उद्धृत, राजपूत— मुस्लिम लीग, पृ. 95
13. मौलाना आजाद— इन्डिया विंग्स फ्रीडम, पृ. 93—94
14. उप. 110

15. लियोनार्ड मोस्ले- लास्ट डे आफ द ब्रिटिश राज , पृ. 27
16. उप. 32
17. नेविंसन- द न्यू स्पिरिट इन इंडिया, पृ. 192
18. उप. 191
19. राम गोपाल- भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास, पृ. 87
20. नेहरु- ओटोबियोग्राफी, पृ. 86-87
21. इन्द्र विद्यावाचस्पति- भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, पृ. 401
22. मेहता और पटवर्धन- द कम्युनल ट्रिंगलर पृ. 78
23. थामप्सन- इनलिस्ट इंडिया ऑफ फ्रीडम, पृ. 59
24. लाल बहादुर- द मुस्लिम लीग, पृ. 57
25. पट्टाभि- कांग्रेस का इतिहास , पृ. 569
26. बनर्जी- मेकिंग आफ द इंडियन कांटीटूशन, पृ. 474
27. माइकेल ब्रेचर- जवाहर लाल नेहरु , पृ. 144
28. पट्टाभि- कांग्रेस का इतिहास , पृ. 571
29. आजाद, वही, पृ. 183
30. माइकेल ब्रेचर- जवाहर लाल नेहरु , पृ. 145

अध्याय तीन

उर्दू उपन्यासों में भारत विभाजन और भारतीय मुसलमान

विभाजन की मांग मुसलमानों के परजीवी वर्ग—जमींदार और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी—ने उठाई थी। इनके अपने स्वार्थ थे, जिसे इन लोगों ने धर्म का बाना पहनाकर पेश किया। अब्दुल्ला हुसैन ने अपने उपन्यास 'उदास नस्लें' में लिखा है। "रोशन आगा दो नजरियों के बीच बंटे हुए थे। खेतों में खुद कभी काम न करने के कारण उन्हें जमीन मात्र से कोई लगाव नहीं था। लेकिन इसकी मिल्कियत और इस कारण उससे जुड़े लोगों के प्रति उनकी निष्ठा थी। दूसरी ओर मुस्लिम लीग के मकसद मुसलमानों के लिए नये वतन पाकिस्तान के प्रति उनका समर्थन भरा नया नजरिया था।" ¹

कुर्रतुल ऐन हैदर ने 'आग का दरिया' में विभाजन के कारण का विश्लेषण करते हुए लिखा है: "हिन्दुस्तानियत और इस्लाम एक मानी के अंदर आ नहीं सके, क्योंकि प्रथम में हिन्दुइज्म शामिल था और उसमें अंग्रेजों ने हिंदू सांप्रदायिक तत्वों के जरिए अलग हिंदू रिवाइवलिज्म का आंदोलन चला रखा था।... हिंदू बहुसंख्यकों के हाथों पिट जाने के भय की सायकालोजी का जिक्र पंडित नेहरू और सरदार पणिकर दोनों ने किया है। यह सवाल इतिहास का बहुत बड़ा अंग है कि यदि इस भय को दूर किया जा सकता तो आज हालात क्या होते?" ²

इस पर वीरेन्द्र यादव की टिप्पणी मौजू है। वह कहते हैं कि कुर्रतुल ऐन

हैदर व अब्दुल्ला हुसैन अपने उपन्यासों के माध्यम से विभाजन व भारतीय मुसलमान को प्रभुत्ववादी राष्ट्रीय विमर्श में ढालते हैं, जो अंततः विभाजन के इतिहास का अभिजात्यवादी भाष्य ही है। यह अकारण नहीं है कि 'आग का दरिया' के चम्पा, कमाल, गौतम नीलाम्बर व हरिवंश तथा 'उदास नस्लें' के अजरा, नईम, परवेज व रोशन आगा सरीखे मुख्य पात्र देश दुनिया घूमे कास्मोपालिटन व आभिजात्य जीवन शैली में रचे पगे ऊबे व सुखी लोग हैं। 'आग का दरिया' में तो जन साधारण की उपस्थिति कमरून, कदीर, रमदैया व रामऔतार सरीखे माली, ड्राइवर, खानसामा व सईस के ही रूप में देखने को मिलती है।" ³

विभाजन की मांग सामंतवर्ग व मध्यवर्गीय नौकरी पेशा लोगों ने की। चम्पा अहमद का परिवार नौकरी पेशा मध्यवर्गीय है। "उसके एक चाचा मुरादाबाद सिटी मुस्लिम लीग के अध्यक्ष थे। सन् 1936 में लखनऊ में जब धूमधाम से मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ तो उसमें चम्पा के पिता और चाचा दोनों सम्मिलित हुए थे। राजा साहब महमूदाबाद जब भी बनारस आते चम्पा के पिता उनकी सेवा में अवश्य उपस्थित होते और पाकिस्तान की मांग के बारे में विचार विनिमय करते।" ⁴

सामंत वर्ग को डर था कि आजादी मिली तो उनकी जागीरें छीन ली जायेंगी। 'एवाने गजल' में राशिद हैदर अली खां से कहता है: "अपन तो एक बात बोलते हैं दूल्हा भाई कि रियासतों का इलहाक हुआ तो अपने ठाट-बाट खत्म हो जाएंगे। मंसब, जागीरें — सब छिन जाएंगी। बड़े बड़े ओहदे सब हिंदुस्तानियां झपट लेंगे।" ⁵ आगे वह कहता है, "और फिर यह बताइए दूल्हा भाई कि आपके कम्यूनिज्म के दौर में यह क्या इंसाफ होगा कि हमारी दौलत छीनकर आप गरीबों को दे देंगे। वह भी तो सख्त नाइंसाफी होगी कि ढीमड़ चमार किसी खानदानी नबाव के बराबर हो जाएं।" ⁶ इस वर्ग की असल पीढ़ा यही है कि निम्न जाति का

व्यक्ति उनके बराबर हो जाएगा। इसलिए यह वर्ग चाहता है कि एक ऐसा देश जिसमें इनकी जागीरदारियां बनी रहें।

सामंती वर्ग आजादी के आंदोलन से दूर अपने में खोया रहा। “यह वह जमाना था जब क्रिप्स की तजवीजें कांग्रेस ने रद्द कर दी थीं और जिन्ना के पीछे मुसलमान चिल्लाते फिर रहे थे, ‘ले के रहेंगे पाकिस्तान’...। पुल टूट रहे थे। रेलें लुढ़क रही थीं। हिंदुस्तान के तमाम अहम लोगों ने सर के खिताब वापस कर दिए थे, लेकिन हुजूर निजाम को इन खबरों से कोई दिलचस्पी न थी। वह रोज रात को एक गजल कहते थे जो मुकामी अखबारों में और उस उस्ताद जलील की राय के साथ पहले सफे पर छपती थी और उस अखबार को अवाम इज्जत के तौर पर कभी रद्दी की टोकरी में न फेंकते थे। मालिक से वफादारी और मुहब्बत दकन के दिलों में सरायत (प्रवेश) कर चुकी थी। हर रोज जब हुजूर निजाम की सवारी सड़कों पर से गुजरती थी तो कतारों में खड़े हुए अवाम उनके दीदार के लिए घंटों ठहरते थे और अजल तक इस रियासत के कायम रहने की दुआएं सुबह-शाम करते थे।”⁷ दकन की जनता अपने सामंतों के साथ थी।

आजादी का आंदोलन तेज हो रहा है दकन के नावाब वाहिद हुसैन अपनी ही दुनिया में कैद हैं “हिंदुस्तान में आजादी की जंग तेज हो रही थी। इनसान भेड़िया बने दूसरे इनसानों का पीछा कर रहे थे... मौत... तबाही... हर तरफ हाहाकार मची हुई थी... यह बाहर की दुनिया वाहिद हुसैन से बहुत दूर थी मगर वह इस दुनिया से अपना नाता नहीं तोड़ सकते थे। इन दो दुनियाओं के बीच वह घिरे हुए बैठे थे। ऐसे वक्त इनसान पाइप में पनाह लेता है या ‘गालिब’ में और वाहिद हुसैन सोच रहे थे कि शायरी की अहमियत जिंदगी में कम समझी जाती है, मगर अकेला ‘गालिब’ कहां-कहां उनका साथ देता है। जब वह बेसहारा हो जाते हैं, बिल्कुल तनहा रह जाते हैं तो ‘गालिब’ को थाम लेते।”⁸

द्वितीय विश्व युद्ध खत्म हो गया है। “गांधीजी अब विदेशी चीजों का बाईकाट करेंगे... अपने आश्रम में व्रत रखेंगे... अहिंसा के जोर पर अब हिंदुस्तान को आजाद किया जाएगा...।

यह ‘हिंदुस्तान’ दकन से बहुत दूर था। जेहनी तौर पर वहां का तसब्बुर करते हुए भी वाहिद हुसैन थक जाते थे।”⁹

भारत से अंग्रेज अपना बेरिया बिस्तर समेट रहे थे और नवाबों जागीरदारों का चैन—ओ सुकून गायब हो रहा था। “ऐसे वक्त में रियासतों में बड़ी खलबली मची हुई थी क्योंकि इत्तिहाद—उल—मुसलिमीन हैदराबाद के इलहाक के हक में न थी और निजाम को अपनी गद्दी नीचे से खिसकती नजर आ रही थी। इधर नेहरू सोशलिज्म के हामी थे। इसलिए क्या कांग्रेस राज में जमींदारी और जागीरदारी बाकी रह सकी थी? सब यही सोच रहे थे।”¹⁰

वाहिद हुसैन रेडिया पर आचार्य कृपलानी, लियाकत अली, खां पंडित नेहरू और जिन्ना की वे तकरीरें सुन रहे थे जो हिंदुस्तान के चालीस करोड़ अवाम की किस्मत का फैसला कर रही थीं।

और उसके धड़कते हुए दिल की आवाज रेडियो हर तरफ फैला रहा था। सोफे पर लेट—लेटे आंखें बंद किए वाहिद हुसैन ने सोचा कि अब वक्त आ गया है जब हमारे ऊपर किसी रेजीडेंट की मर्जी नहीं चलेगी। अब सल्तनतें—आसफिया अपना खोया हुआ बकार हासिल कर लेगी। जाने देहली का शहशाह अब कौन होगा नेहरू या गांधी ? और शहशाह का लिबास तो यकीनन वही राम और कृष्णा वाला होगा ही, तख्ते—ताउस आगरे से उठा लाएंगे। शायद नेहरू अकबरे आजम के नक्शे कदम पर चलें, लेकिन सरदार पटेल तो रामराज्य के कायल थे। अल्लाह की शान, पूरे एक हजार साल बाद फिर आर्यों का जमाना लौट रहा था, कौरवों और पांडवों में किस्मत आज माई थी, जाने किसकी जीत होगी ?

वाहिद हुसैन तो चाहते थे कि किसी तरह आला हजरत इस वक्त देहली पर चढ़ाई करके पूरे हिंदुस्तान की बागडोर संभाल लें और हर जगह खानदाने आसफिया का बोलबाला हो जाए।”¹¹ लेकिन वाहिद हुसैन की इच्छा पूरी न हो सकी।

इकन में दंगा फसाद हर तरफ हो रहा था। गांधी लोगों को समझा रहे थे। ‘वह तो फसाद की जगह खुद जाकर मुसलमानों को मरने से रोकते हैं।’¹² लेकिन धीरे-धीरे वहां के हालात खराब हो रहे थे क्योंकि “इधर तो कम्युनिस्टों ने जिलों में जोर उठाया था, उधर इंडिया यूनियन रियासत के इलहाक पर जोर दे रही थी और अब यह मरहला बातचीत से आगे बढ़कर तशददुद (हिंसा) की सूरत इख्तियार करनेवाला था। कासिम रिजवी हर तरफ गजबनाक और जोशीली तकरीरें करके जज्बात को भड़का रहे थे। हर नौजवान के लिए फौजी परेड जरूरी कर दी गई।”¹³

राशिद हुसैन दोनों तरफ था। “वह इत्तहाद-उल-मुसलिमीन का मेंबर था। हर तरफ जलसे करवाता, चंदे जमा करता, उसके साथ ही कांग्रेस आफिस कमेटी का प्रेजीडेंट भी था। इलहाक (विलय) के सिलसिले में जो वफद (प्रतिनिपधि मंडल) देहली बातचीत करने गया था राशिद उसमें शामिल था। और जब मुआशी मुकातअ हुआ तो उसने और मलेशम ने मिलकर खूब हाथ रंगे। इत्तहाद -उल-मुसलिमीन के हाथों उसने शराब के भाव पैट्रोल बेचा, सोने के भाव दवाएं निकाली गई।”¹⁴ राशिद का उद्देश्य साफ था, या कहें इस वर्ग का उद्देश्य साफ था जहां, जिसके साथ फायदा हो, वहीं चले जाना बुद्धिमानी है।

हैदराबाद रियासत भारत में मिलना नहीं चाहती, वह स्वतंत्र रहना चाहती है। भारतीय सेना रियासत को चारों तरफ से घेर लेती है। ‘ऐवाने गजल’ की लेखिका जीलानी बानो इस दृश्य को बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करती हैं:

“खुरदाद का महीना आ गया। हलकी-हलकी बदलियां छाई रहती थीं और बदलते मौसम के उतार चढ़ाव दिलों में भी खलबली मचाए हुए थे। हैदराबाद की सरहदों पर इंडियन युनियन की फौजें आ चुकी थीं। हर तरफ घबराहट बेचैनी फैली हुई थी क्योंकि आला हजरत ने सर वाल्टर मांकटन के जरिए देहली जो तजवीजें भेजी थीं, नामंजूर हो चुकी थीं। इधर कासिम रिजवी जिन्ना से बड़ी-बड़ी उम्मीदें लगाए बैठे थे, लेकिन इस बात से नावाकिफ थे कि हैदराबाद से जानेवाले खत टेलीग्राम और खबरों का सारा रिकार्ड इंडिया के एजेंट के.एम. मुंशी के पास था, लेकिन कासिम रिजवी ने अवाम को याद करा रखा था कि पाकिस्तान हवाई जहाज फौजी कुमुक लेकर बेगमपेट के हवाई अड्डे पर उतरने वाले हैं, मगर मिस्टर जिन्ना जानते थे कि हैदराबाद के भविष्य का हल फौजी कार्रवाई में नहीं है, इसलिए वह किसी भी तरह जारहाना (आक्रमण) ऐक्शन के खिलाफ थे। इस नाजुक मरहले पर भी कासिम रिजवी मिशन वापस लेने को तैयार नहीं हुए।

क्योंकि अवाम में सल्लनते-आसफिया को बचाने के लिए बड़ा जोशोखरोश था इसलिए कासिम रिजवी ने अपने तौर पर रजाकारों को सरहदों पर लड़ने का हुक्म दे दिया था।

‘किंग कोठी’ में बैठे हुए आला हजरत देहली के बदमाशों और रजाकार गुंडों का मुंह तोड़ने का हुक्म देते रहे लेकिन उस वक्त तक निहत्थे नौजवान इंडियन यूनियन की फौज का मुकाबला करने पहुंच गए और टैंकों के नीचे तिनकों की तरह पिसने लगे।

हर तरफ हमा-हमी थी। सब फरार के रास्ते ढूँढ़ रहे थे। मफाद परस्त खुदसाख्ता लीडर मासूम और निहत्थे नौजवानों को बहका रहे थे। फिजा नारों और तकबीरों से गूंज रही थी।

‘आगे बढ़ो! वतन के लिए खून का आखिरी कतरा भी बहा दो!’ कासिम

रिजवी चिल्ला रहे थे।

गुंडे, बदमाश...! इन सबकों गिरफ्तार करवा दो!' आला हजरत गुस्से और गम के मारे हुक्म देते रहे। उन्हें सख्त ताज्जुब था कि आज उनके इताब (प्रकोप) से दरो दीवार लरज क्यों नहीं जाते!

हर घर का एक-न-एक नौजवान जंगल की किसी झाड़ी में उलझा हमेशा की नींद सो रहा था। जुनून के आलम में उन्होंने बढ़ते हुए टैंकों को रोकने के लिए अपने हाथ फैला दिए थे क्योंकि उनके पास हथियार नहीं थे और उन्होंने अपनी हिफाजत की कोई तैयारी नहीं की थी। वह तो एक आजाद और खुद मुख्तार रियासत के बाशिंदे थे जो रियासत के बाहर के हर फर्द को हिकारत से देखते थे। उनकी बख्शिाश और सखावत के दूर दूर तक चर्चे थे। जिसको यहां पनाह मिली, उसकी सात पुश्तों का ठिकाना हो गया। जो यहां से दुत्कारा गया, उसे कहीं आसरा नहीं मिला। हमारी तहजीब हमारा मुल्क... हमारा वतन... हमारे हुजूर पर जान निसार करनेवाली उनकी वफादार रियाया जो तोवों के दहाने के आगे डटी हुई थीं क्योंकि वह हुजूर पुरनूर के बजूद के बिना जीने का तसब्बुर नहीं कर सकते थे... यह बड़ी अजीब-सी शहंशाही थी... अनोखी तानाशाही जहां बादशाह से प्यार और ताजीम (सम्मान) का जज्बा हर जज्बे से बढ़कर था... और इसका सबुत इंडियन युनियन की फौजों को पांच दिन में हर-हर कदम पर मिला।

अब सड़कें सुनसान पड़ी थीं। उन मांओं के दिलों की तरह जिन्होंने अपनी आंखों की जोत खो दी थी।

बगावत का जोश दिलाने वाले लोग तो रातों-रात पाकिस्तान भाग गए थे। बाकी जो रह गए थे, वे भी कहीं-न-कहीं छुप गए।”¹⁵

शराबी शेखू मियां जिनके व्यक्तित्व का वर्णन लेखिका ने इस तरह किया

है, उनकी पतली कमर पर पतलून किसी तरह टिक नहीं रही थी। वह सिर्फ आधे मील चलकर बुरी तरह हॉफ जाते थे, की कमांड में रजाकारों का दस्ता लड़ाई पर जा रहा था। पैदल मार्च पास्ट करते हुए। जिसमें “पच्चीस तीस बरस से लेकर सोलह सत्तरह बरस के नौउम्र लड़के भी थे जिनके आगे –आगे मौत चल रही थी। वे नहीं जानते थे कि उनकी राह कौन-सी है, मगर इसके बावजूद इज्जत और वतन-दोस्ती के नाम पर कट मरने को तैयार हो गए थे। सारे मुहल्ले के लोग उन पर फूल फेंक रहे थे, नारे लगा रहे थे, जगह-जगह पर उन्हें रोकर फूल पहनाए जाते।”¹⁶

इस मार्च में राशिद का भानजा अयाज भी शामिल था। “राशिद भी फाटक से बाहर आया और उन लोगों को रोककर सबसे हाथ मिलाए। मुबारकबाद दी और उन्हें पहनाने के लिए फूल मंगवाए। अचानक फौजिया चिल्लाई ‘अयाज भाई’... गजल देख अयाज भाई भी जा रहे हैं।”¹⁷ गजल ने देखा उसका भाई खाकी बरदी पहने कंधे पर बंदूक रख, सब के साथ चल रहा था। गजल ने आवाज दी, वह सफ तोड़कर चला आया, अपनी नानी के सामने कदमबोसी के लिए झुका। उसे देखकर वहां सभी जोर-जोर से रो रहे थे। अयाज ने अपनी बहन से कहा, “गज्जो मैं भी फ्रंट पर जा रहा हूँ। तू घबराना मत। मैं जल्दी आ जाऊंगा।”¹⁸ अयाज रजाकारों में इस उम्मीद से शामिल होता है कि उसे नौकरी मिल जायेगी। वह अपनी बहन से कहता है, गज्जो मुझे मैट्रिक पास करने के बाद भी कहीं नौकरी नहीं मिल रही है। मैं वहां से वापस आऊंगा तो फौज में मुझे बहुत बड़ी पोस्ट मिल जाएगी। कासिम रिजवी ने हमसे वायदा किया है। फिर हमारे घर की सब मुसीबतें दूर हो जायेंगी। तेरा रोना खत्म हो जाएगा...।”¹⁹ उसे जाता देख सब रो रहे थे। राशिद अंदर आया और सबको डांटते हुए कहा, “यह क्या हाय बावेला मचाई है। ख्वाहमख्वाह अयाज को परेशान कर रही हो।

आखिर हमारे खानदान से एक आदमी भी लड़ने नहीं जाएगा तो बदनामी नहीं होगी ? जाओ बाबा अल्लाह को सौंपा तुम्हें। खैरियत से घर वापस आना!" ²⁰

जंग की खबरों के बीच में यह धमाका गूंजने लगा कि इंडियन यूनियन की फौजे आ रही है और सारा हैदराबाद खौफ से कांपने लगा। मेरा भाई... मेरा बेटा.. मेरा शौहर... हर घर से चीखें बुलंद हो रही थीं। औरतें अपनी छतों पर खड़ी उन नन्हें सिपाहियों को पुकार रही थीं जो बंदूके थामना नहीं जानते थे मगर चंद खुदगर्जों ने उनके हाथ में जज्बात की लाठी थमा दी थी। हजारों नौजवानों की लाशें पेड़ों में उलझी हुई थीं, चट्टानों पर बिखरी पड़ी थीं नदियों में तैर रही थीं। उनकी खुली हुई निश्चल आंखें पूछ रही थीं हम किसके लिए लड़े ?" ²¹ जो लोग लड़ा रहे थे, वे भागकर पाकिस्तान चले गए।

खादिम अली बेग ने बंबई से एक डेकोटा हासिल कर लिया था जो उन्हें हिफाजत के साथ पाकिस्तान ले जाएगा। "यह वही खादिम अली बेग थे जिन्होंने इत्तहाद-उल-मुसलिमीन के जलसों में कौम को अपने खून का आखिरी कतरा बहाने की तालीम दी थी। मांओं और बीवियों के आगे गिड़गिड़ाए थे कि मादरे-वतन उनसे कुर्बानी चाहती हैं।" ²² लेकिन खुद कायरों की तरह मुंहे छिपाकर भागना चाहता है।

कल का सांमत, आज का पूंजीपति राशिद हुसैन गिरगिट की तरह रंग बदलता रहा। एक तरफ रजाकारों के लड़ाकों का फूलमालाओं से स्वागत कर रहा है, दूसरी तरफ यूनियन की फौजों के लिए फूलों का हार लिए दौड़ रहा है। उसके दुरंगेपन को उजागर करते हुए 'एवाने गजल' की लेखिका जीलानी बानो लिखती हैं: "राशिद फूलों के हार लेकर सिकंदराबाद दौड़ा। यूनियन की फौजों का स्वागत करने... और वहां जाने से पहले उसने आली जनाब जे. एन. चौधरी के नाम एक दरखास्त लिखी जिसमें निजाम के अहद में बिजनेस करने वालों के

साथ जुल्म और ज्यादाती और उनसे जबरन इत्तहाद—उल—मुसलिमीन में शिरकत करवाने का हवाला देकर मौजूदा दौर में इंसाफ करने की दरखास्त की गई थी।”²³

शेखू ने भी कलाबाजी की। वह “अब इत्तहाद—उल—मुसलिमीन से निकलकर कांग्रेस की अमन कमेटी के सेक्रेटरी बन गए थे और जगह—जगह हिंदू—मुस्लिम इत्तहाद के जलसे करवाते थे और फिर उन्होंने फौजी हुकूमत के आगे गद्दार और जालिम मुसलमानों की फेहरिस्त पेश की। बताया कि किस घर में कितने हथियार छुपे हुए हैं और किस डयोढी में कितना सोना पड़ा हुआ है? कौन—कौन अपनी दौलत पाकिस्तान भेज रहा है? इसलिए शेखू भाई के आजकल मजे थे, खूब ठाठ की नई शेरवानी और साबित चप्पलें पहने घूमते। रोज शाम को नशे में चूर हाथ में चाट का दोना थामे, दालान की सीढ़ियों में आ बैठते थे। लंगडी फूपो ने उनके यह ठाठ—बाट देखे तो एक बार फिर शेखू भाई का घर बसाने की फिक्र में पड़ गई।”²⁴

राशिद का बेटा शाहीन लंदन में डाक्टर की पढ़ाई कर रहा था। “राशिद इंतजार कर रहा था कि शाहीन आ जाएगा तो पाकिस्तान चले जाएंगे। यहां का पैसा वहां मुंतकिल कर देंगे। शाहीन फिर यूरोप ही जाकर कमाएगा। यहां की नौकरियों में क्या रखा है, मगर शाहीन को पाकिस्तान जाना बिलकुल पंसद नहीं था।”²⁵ शाहीन राष्ट्रभक्त आदर्शवादी युवक था। वह अपने पिता से अलग था। “अक्ल और चालाकी तो उसे छूकर नहीं गई थी। भला कोई यूरोप पलट डाक्टर गांव में जाने पर इसरार करेगा? मगर वह कर रहा था। उसे हिंदुओं से डर नहीं लगता था और हिंदुस्तान से बाहर जाने को तैयार नहीं था, हालांकि राशिद चाहता था कि वह या तो यूरोप लौट जाए, वरना पाकिस्तान चला जाए। मगर वह हैदराबाद छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। रजिया चाहती थी कि शाहीन यूरोप

से एक मेम ब्याह लाए ताकि वह फिरंगी पोते— पोतियों की दादी कहलाएं, मगर वह हर बार यही जवाब देता कि अम्मी यूरोप की औरत हम हिंदुस्तानियों के लिए ठीक नहीं है। इस तरह राशिद ने रुपया कमाने की जितनी तजवीजें रखी, वह सबको रद्द करता गया। हैदराबाद में हार्ट—स्पेशलिस्ट इस वक्त एक दो के सिवा और कोई न था। इसलिए राशिद ने सोचा था कि शाहीन मुलाजमत के साथ एवाने गजल के बाहरवाले हिस्से में अपना प्राइवेट क्लीनिक भी खोल ले, मगर शाहीन इस पर भी तैयार नहीं हुआ कि मैं एक ही वक्त में इतने मरीजों पर ध्यान नहीं दे सकूंगा।”²⁶

राशिद की चाची पाकिस्तान चली जाती है। ‘एवाने गजल’ में लिखा है: “उजाला बेगम जितनी जायदाद यहां छोड़ गई थीं, उतनी ही पाकिस्तान गवर्नमेंट से हासिल कर ली थी और पहले से ज्यादा ठाठ—बाट से थीं।”²⁷

शेखू की सिपायसी सरगर्मियां तेज थी। वह शाहीन से कहता है: “अजी क्या बताऊं डाक्टर साहब! कौम की खातिर बड़ी मुसीबतां उठानी पड़ रही है। मुसलमान बेचारे कितने बरबाद हो गए हैं। उन्हें बचाना अब हमारा काम है। शेखू भाई शुरू हो गए, ‘देखो बाबा अब तक दस खानदानों को उनकी दौलत के साथ पाकिस्तान भिजना दिया हूं। सिर्फ नावाब अजीमुद्दीन खां दस लाख रुपया अपने साथ ले गए हैं। इधर गरीब मुसलमानों की हिफाजत के लिए हमने कैंप लगाए हैं। इंडियन गवर्नमेंट ने मुझे उसका गता (ठेका) दिया है। इस वास्ते शाहीन आजकल अपन तो मजे में हैं।”²⁸

आजादी मिली। यह बड़ा अफरा—तफरी का दौर था। “आला हजरत ‘राज प्रमुख’ बन चुके थे। और के.एम. मुंशी ने इंडियन यूनियन के एजेंट बनकर तमाम इख्तियारात अपने हाथ में ले लिए थे। अभी चंद माह पहले गांधीजी का कत्ल हो चुका था। इसलिए हर तरफ सख्त दहशत और बेचेनी फैली हुई थी।

इत्तहाद—उल—मुसलिमीन के कुछ लीडर रातों—रात फरार हो चुके थे। कासिम रिजवी जेल में थे और लायक अली अपने घर में ही नजरबंद थे।

उस वक्त राशिद और उसके साथियों ने कांग्रेस सरकार के सामने अपनी वफादारी के हजारों सबूत पेश किए। इसके बावजूद जागीरें और मंसब खत्म हो रहे थे। घबराकर वे बगावत की सोचते... मगर कैसी बगावत ?

हरतरफ सिसकियां और आंसू थे। हजारों लोग जिन्होंने गांधीजी के इशारे पर अपने खिताब और जागीरें वापस कर दी थीं, फांसी के तख्ते और जेल की सख्तियां बर्दाश्त की थी, उन्हें वक्त से पहले पेंशनें दी जा रही थीं। बहुत—से छोटे—बड़े क्लर्कों, पुलिस—अफसरों और अहम, ओहदेदारों को जबरदस्ती उनके ओहदों से निकाल दिया गया। इस हमा—हमी के आलम में हर शख्स सोच रहा था कि आइंदा क्या होगा ? ऐसे वक्त राशिद चारों तरफ हाथ पैर मार रहा था। कम्युनिस्ट पार्टी पर पाबंदी लग चुकी थी। इसलिए मखदूम और उनके साथी अंडरग्राउंड थे।

इन हालात में शाहीन सोचता कि इनसान बचकर कहाँ जाएगा ?

उसने राशिद की तमाम तजवीजें रद्द कर दी थीं। वह न तो पाकिस्तान जाएगा और न अमरीका जाकर दौलत कमाएगा। दौलत कमाने में उसे कोई दिलचस्पी नजर नहीं आती थी। क्योंकि उसके बाप और दादा ने जो दौलत कमाई थी। वह ऐवाने गजल बनी उसे चारों तरफ से घेरे हुए थी और जब हर तरफ ऐसे ही घेरे खिंचे हुए हों तो भागने की कोशिश क्यों करे ? इसलिए शाहीन हैदराबाद में ही रहना चाहता था। तमाम सियासी और समाजी आंदोलनों से अलग मेडीकल रिसर्च में वक्त लगाना चाहता था।”²⁹ शाहीन क्रांतिकारी कवि मखदूम का प्रशंसक था। जब वह हाईस्कूल में पढ़ता था, तब अपनी साइंस की किताब अलग रखकर मखदूम की रोमानी नज्में गुनगुनाने लगता था। देखन के

मुसलमान द्वंद्व में फसे हुए थे ।

‘आग का दरिया’ व ‘उदास नस्लें’ के पात्रों की सामाजिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि उत्तर भारत के ताल्लुकेदारों, जमींदारों और बड़े अफसरों के जिस समाज से बाबस्ता है, वही पाकिस्तान की रीढ़ था। मुस्लिम समुदाय के इस कुलीन वर्ग ने अपने हितों की पूर्ति के लिए ‘दो राष्ट्र’ के सिद्धांत को साधन के रूप में अपनाया...। ‘आग का दरिया’ के विभाजन व मुस्लिम लीग संबंधी प्रसंगों को पढ़ते हुए यह दुविधा लगातार बनी रहती है कि वे अक्सर अपने राजनीतिक बयान को औपन्यासिक विमर्श में विन्यस्त करने में असफल रहती हैं। यही कारण है कि उन्हें अपने उपन्यास की अंतर्वस्तु में कई पृष्ठों के लम्बे-लम्बे उद्धरणों का सहारा लेना पड़ता है।” ³⁰ “वफादार अंग्रेजी दां मुसलमानों का मध्यम वर्ग शुरू हुआ। मुल्क की धरती पर जी तोड़ मेहनत मशक्कत करके जिन्दा रहने वाले मुसलमान जुलाहों और किसानों का मुस्लिम लीग के लीडरों को ख्याल तक न आया। उन सबको यही चिंता थी कि अपने लिए अधिक से अधिक आया। उन सबको यही चिंता थी कि अपने लिए अधिक से अधिक आर्थिक सुरक्षा और नौकरिया कैसे प्राप्त कर ली जाएं।” ³¹ यही नहीं “नवाब अली रजा बहादुर के दामाद ताल्लुकेदार उनकी रजा बहादुर खुले बंदों राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग न ले सकते थे। अवध के ताल्लुकेदारों ने 1857 ई. में अवध को बचाने के लिए जमकर अंग्रेजों का मुकाबला किया था। मगर, तब में यही ताल्लुकेदार अंग्रेजों के भक्त सिद्ध हुए, क्योंकि उनके और अंग्रेजों के गठजोड़ के द्वारा किसानों पर उनका आधिपत्य कायम रह सकता था।” ³² जो कभी अंग्रेजों से लड़े थे, आज अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अंग्रेजों के खिदमतगार हो गए।

अब्दुल्ला हुसैन मुस्लिम लीग के अभिजात्य विमर्श को ‘उदास नस्लें’ में यू औपन्यासिकता प्रदान करते हैं: “बैठक में परवेज हावी था। उसकी बातें तार्किक

थीं। रोशन आगा को नए मुल्क में हिंदू व सिखों द्वारा छोड़ी गई जमीन पर अपनी जमीन का पूरा मुआवजा मिल जाएगा और जहां तक सिविल सर्विस में उसके कैरियर का सवाल था, ऊंचे-से-ऊंचे ओहदे पर उसकी तरक्की के बेशुमार अवसर थे। वैसे भी पाकिस्तान में मुस्लिम अफसरों की बहुत कमी होगी क्योंकि पूरे हिंदुस्तान में मुस्लिम अफसरों की तादाद बहुत अधिक नहीं थी।”³³

पाकिस्तान बन गया। गौतम चम्पा से कहता है: “पाकिस्तान मुसलमानों की आर्थिक समस्या हल करने के लिए बनाया गया है— तुम्हारे बाबा का क्या इरादा है ?”³⁴ कमाल कहता है “बाबा कैसे जा सकते हैं। जमींदारी नहीं चली जायेगी साथ ? भैया साहब ने अलबत्ता ऑफ्ट ;च्छ कर दिया है।”³⁵ भैया साहब यानी आमिर रजा पाकिस्तान जा रहे हैं।

चम्पा भैया साहब से मिलने जाती है। वहां जा दृश्य है:

‘गुलफिशा’ के फाटक पर उसे रामऔतार मिला।

भैया साहब है ? उसने एकाएक अनुभव किया कि उसकी आवाज कांप रही है। वह चोरों की तरह डरी हुई है। वह ‘गुलफिशा’ में से सेंध लगाने आई है।

भैया साहब तो अभी— अभी चले गए।... कहाँ ?”

अब बाग के अंधेरे में से निकल कर गंगादीन भी सामने आ गया।

‘कहां चले गए भैया साहब?’ चम्पा ने दोहराया।

वहीं। रामऔतार ने कड़ुआहट से उत्तर दिया — “मुसलमानों के पाकिस्तान। अब आप भी चली जाइयेगा — सब जने चले जायेंगे ? हम यहां अकेले रह जायेंगे।”

गंगादीन, रामऔतार के निकट आ गया। वह बड़ा पढ़ा —लिखा आदमी था और रोज हिंदी अखबार पढ़ा करता था। “भैया साहब बड़े बेवफा निकले। चम्पा बिटिया को छोड़कर चले गए चुप्पे से। उन्होंने हमें भी छोड़ दिया। भैया

साहब ने गंगादीन से दगा की...बड़ी बेवफा, बड़ी बेमुरव्वत कौम है मुसलमानों की, उसे आज के हिंदी-अखबार का सम्पादकीय याद आया जिसमें मुसलमानों को गद्दार बताया गया था।

“ भैया साहब बम्बई गये हैं। हुआं जहाजन का बटवारा होत है। अपने मुसलमानों जहाज लेकर कराची चले जइहैं— कदीर बतावत रहें ।” रामऔतार ने सूचना दी— “हो लाला ला लाला —” उसने तोतों को उड़ाने के लिए फलों के पेड़ों पर एक पत्थर फेंका।

गंगादीन और रामऔतार को अपने-अपने सोच में डूबा छोड़ कर वह वापस लौटी । भैया साहब चले गये , क्योंकि घोड़ो, मोटरों और लड़कियों के अतिरिक्त अब उनके जीवन में एक नयी दिलचस्पी पैदा हो चुकी थी। नया देश, नया पद , उन्नति , नयी समस्याएं — पुरुषों की दुनिया बिल्कुल अलग होती है।” ³⁶

देश विभाजन को कुर्रतुल ऐन हैदर महाभारत के युद्ध में अर्जुन-कृष्ण संवाद के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं, जो इस तरह है:

“और जब दोनों भाइयों में गृहयुद्ध आरंभ हुआ तो अर्जुन ने अपना धनुष उठाकर श्रीकृष्ण से कहा — ओ जनार्दन ! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दो ताकि मैं देखूं कि मुझे कौन से पक्ष का साथ देना चाहिए।

और श्रीकृष्ण ने रथ वहां ले जाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन ने देखा कि दोनों सेनाओं में एक दूसरे के पुरखे, बाप, दादा, चाचा, भाई, भतीजे, बेटे, मित्र, गुरु, साथी एक दूसरे के विरुद्ध मोर्चा बांधे खड़े हैं।

तब कुंती के बेटे ने दुःख में डूब कर कहा— ओ कृष्ण, यह दृश्य देखकर मेरे हाथ-पांव शिथिल पड़ गये हैं। मेरा कंठ सूख रहा है। मेरा शरीर थर-थर कांप रहा है। मेरे सिर के बाल खड़े हो गए हैं। मेरा धनुष मेरे हाथ से गिर जा

रहा है। मेरा शरीर तप रहा है। ओ केशव में, सीधा खड़ा नहीं हो सकता। मेरा मस्तिष्क चकरा रहा है। मुझे बुरे सगुन दिखाई दे रहे हैं। ओ माधव, मैं अपने ही कुटुम्ब, अपने ही मित्रों और अपने ही गुरुजनों को मारना नहीं चाहता—

क्योंकि, कुटुम्ब के नष्ट हो जाने से प्राचीन परंपराएं समाप्त हो जायेंगी और आध्यात्म की समाप्ति के साथ कुटुम्ब भी नष्ट हो जायेगा। स्त्रियां सचरित्र नहीं रहेंगी और पूर्वजों की प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी। उनका आदर और अनुकरण करने वाला कोई न रहेगा।

ओ मधुसूदन, मैं नहीं जानता कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है— मैं या मेरे शत्रु, हमें उनको पराजित करना चाहिए या उन्हें हमें। ओ गोविन्द!”³⁷ अर्जुन जैसी स्थिति भारत पाकिस्तान में बंटे लोगों की हो गई थी। कुरतुल ऐन हैदर 1947 की विभीषिका का वर्णन नहीं करतीं। वह सिर्फ हिंदुस्तान सन् 1947 ई. डालकर छोड़ देती हैं।

पाकिस्तान बनने के बाद कुछ लोग वहां चले गए और कुछ जो पाकिस्तान के समर्थक थे वह पाकिस्तान नहीं जाते। ऐसे ही लोगों में कमाल के बाबा हैं। कमाल उनसे पूछता है अब क्या इरादा है ? कर्बला हिजरत की जायगा या पाकिस्तान या “यही रहेंगे ?” उन्होंने इत्मीनान से उत्तर दिया। “कोई हम भेगोड़े हैं ?

कमाल हक्का-बक्का रह गया। “मगर बाबा, आप तो बड़ी धूम-धाम से मुस्लिम लीग में शामिल हुए थे।”

“हां, हां तो फिर ? पाकिस्तान बन गया। ठीक हुआ । अब इसका यह मतलब थोड़े ही है कि हम भी भाग जायें यहां से ?”

“आप पाकिस्तान को अपना जायज वतन समझने के बाद भी हिजरत नहीं करना चाहते क्योंकि सोचते हैं कि इस बुढ़ापे में कहां दर-बदर मारे-मारे फिरेंगे,

या इसलिए कि हिंदुस्तान को अपना वतन समझते हैं और उससे प्रेम के कारण उसे नहीं छोड़ सकते ?” ³⁸

कमाल आज साफ-साफ मालूम करना चाहता था कि उसके बाप और बाप की नस्ल के लोगों का मनोविज्ञान आखिर क्या था उनके आइडियल्ज, उनका तर्क, उनका साहस या उनकी कायरता।

“अब तुमसे जिरह कौन करे। तुम्हारी खोपड़ी हमेशा की उल्टी है।” नवाब साहब ने उत्तर दिया और घड़ी देखी। उनको आज अदालत में जाकर मुआवजे की किस्त के रुपये लाने थे। इन्हीं रूपयों से महीने का खर्च चलता था।

“अब मैं आमिर भैया की दुल्हन के दर पर तो जाकर पड़ने से रही, कराची में। यहां कम-से-कम अपना घर तो नहीं छिना है। अगर चले गये तो यह भी गया और मुआवजा भी खतम। वहां कौन कलेम वलेम करता फिरेगा। वैसे मेरा दिल नहीं लगता अब यहां।” अम्बा बेगम ने कहा।

मगर यह तो आपका घर है। आपका शहर, आपका वतन, जनम-जनम का देस।” कमाल ने कहा।

“मुसलमान का कोई वतन नहीं है। सारा जहां वतन है।” छोटे फूफा ने कहा जो हाल ही में हिजरत करके कराची गए थे, और इन दिनों सामान का तिया पांचा करने आये हुए थे।

कमाल ने इस संबंध में अधिक विचार विमर्श व्यर्थ समझा, और उठ कर बाहर आ गया। ³⁹

कमाल ने भारत में नौकरी खोजनी शुरू की। “उसके पास अनगिनत डिग्रियां थी। ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिज, इम्पीरियल कालेज आफ साइंस, लंदन और कई साल उसने इंग्लिस्तान की एक प्रसिद्ध लिबोरेटरी में नौकरी की थी। बरतानिया की नौकरी छोड़कर वह देश सेवा की भावना लेकर वापस आया था।

यूनिवर्सिटी में जिस जगह के लिए वह कोशिश कर रहा था वह उसे नहीं मिल सकी क्योंकि वह मुसलमान था।”⁴⁰ छह महीने गुजर गये लेकिन उसे नौकरी नहीं मिली। इस निराशा में उसने तलअत को पत्र लिखा: “हिंदुस्तान हरगिज मत आना। जहां तक हो सके वहीं रहे जाओ! यहां आयोगी तो वही हाल होगा जो मेरा हो रहा है।”⁴¹ तलअत ने जवाब दिया: “तुमको क्या हो गया है ? इतने डीमोरलाइज्ड क्यों हो गए ? संघर्ष का साहब खो बैठे। यही तो वक्त है आजमाइश का। डटे रहो। मजदूरी करो, हल चलाओ, आखिर इंकलाब का सामना करना, इसी को तो कहते हैं। मगर क्या तुम ऐश के सपने देख रहे हो ? अगर ऐसा है तो पाकिस्तान चले जाओ। पर मैं तुमसे उम्र भर न बोलूंगी।”⁴²

दूसरी और हरिशंकर जो कमाल का दोस्त है अमेरिका से लौट चुका था, और बंगलौर में उसकी नियुक्ति हो गयी थी।”⁴³ वही इसी निराशा और विच्छेव के दौर में कराची से भैया साहब का पत्र आता है: “तुरंत यहां आ जाओ। एक से एक बढ़िया ओहदे यहां मौजूद हैं। बस तुम्हारे आने की देर है। जिद छोड़ दो। वह दुबारा बदल कर ब्राजील के दूतावास जाने वाले थे और बराबर लिखा करते — आ जाओ! आ जाओ! आ जाओ!!”⁴⁴

कमाल का दोस्त गुलशन कहता है: “सुना है पाकिस्तान में साइंस वालों की बड़ी मांग है। वहां जाओ। यहां क्यों झक मार रहे हो ?” कमाल चकित होकर पूछता है: “तुम भी यही कहते हो ?”⁴⁵

आखिर वह दिन भी आ पहुंचा, जब कमाल ने देहली जाकर बीजा के लिए अर्जी दे दी। इस फैसले पर पहुंचने से पहले उसने कई रातें जाग कर गुजारी थीं। ...वह बराबर अपने आप से यह कहना जारी रखता — तुम डरपोक हो! कमीने ! डरपोक! तुम्हारी वह सारी नेशनलिस्ट ट्रेनिंग कहां गयी ? तलअत ठीक कहती है— घास खोदो, हल चलाओ, लानत है तुम पर। अवसरवादी, बेईमान,

दुलमुल यकीन कहीं के ! अब जामेमिल्लिया और अलीगढ़ युनिवर्सिटी दो जगह का आसरा रह गया था। मगर, फिलाहल वहां भी इसके लायक कोई जगह खाली न थी । उसने बहरहाले तय कर रखा था कि भुखा मर जायेगा, मगर वतन छोड़ने का सवाल ही नहीं उठता।

तभी एक दिन अदालत ने फैसला सुना दिया । 'गुलफिशां ' सर जकी रजा के नाम रजिस्टर्ड थी। आमिर रजा उनका इकलौता उत्तराधिकारी पाकिस्तानी था। 'गुलफिशा' मतरुका (छोड़ी हुई) जायदाद करार दे दी गयी । दूसरे रोज सुबह जब कमाल की आंख खुली तो उसने खुद को लखनऊ में रिफ्यूजी पाया। तीसरे दिन पुलिस के अफसर कोठी में ताले डालने के लिए आ गये । चौथे रोज कमाल रजा ने बीजा बनवाया और अपने बूढ़े माता – पिता को लेकर में बैठ गया। पांचवे दिन ट्रेन दिल्ली पहुंची। छठे रोज ट्रेन ने बार्डर क्रॉस किया। सातवें दिन कमाल रजा कराची पाकिस्तान में था।" सातवां रोज 'सबूत का रोज ' था और इंसान अपना खून पी रहा था।" ⁴⁶

कमाल रजा का पाकिस्तान विरोध जितना रूमानी व इंकलाबी था, पाकिस्तान जाने का निर्णय उतना ही कायराना व निजी स्वार्थों का परिणाम । जिस सामंती परजीविता पर उसकी क्रांतिकारिता टिकी थी, उसके स्रोत सूखते ही उसका यह संकल्प समाप्त होना ही था कि भूखा मर जाएगा, मगर वतन छोड़ने का सवाल नहीं उठता। कुर्रतुल ऐन हैदर कमाल के पाकिस्तान जाने के निर्णय को, उसके मानसिक अंतर्द्वंद्व व 'लखनऊ में रिफ्यूजी' होने की उसकी नियति का विमर्श रच कर , तर्क सिद्ध करती है। यह करते हुए वे अपनी वर्ग सोच का अतिक्रमण नहीं कर पातीं।

'आग का दरिया' के आत्मकथात्मक चरित्र चम्पा अहमद के माध्यम से कुर्रतुल ऐन हैदर स्वयं को महिमामंडित करती हैं, "मैं महज चम्पा अहमद हूं। मेरे

घाव किसी को दिखाई नहीं दे सकते, क्योंकि मेरे तामाशाई भी मेरी तरह घायल है। वे कमजोर और फानी इन्सान हैं। देखने वाले आंख नहीं रखते। लोग मुमकिन है कि मुझ पर हंसते भी हों, जबकि सेंट सोफिया की पूजा की जाती है।”⁴⁷ कुर्रतुल की चम्पा अहमद का हिंदुस्तान बसने का निर्णय उसका व्यक्तिगत निर्णय न होकर वतन के हालात से परिचालित है। उन्होंने ‘अपने दुख को दुनिया के दुख में समो दिया था।’⁴⁸ और कमाल सोचता है कि “वे इस समय अकेली नहीं थीं। अब वे समूह का एक भाग थीं। ...चम्पा जब अकेली नहीं थी। जुलूस में शामिल हैं, आगे बढ़ रही है। उनके साथ मुहल्ले की गलियों मस्जिद की मीनार, जेबुन और मरियम, सड़क पर गोलिया खेले हुए लड़के, ठेलेवाले गरीब, बुर्कापोश औरतें और सारी जनता है। चम्पा बाजी उन सबकी साथिन बन गयी है।”⁴⁹

‘आग का दरिया’ की इस आदर्शवादी भाव विहवलता से न तो भारत विभाजन का सही परिप्रेक्ष्य समझा जा सकता है और न भारतीय मुसलमान की त्रासदी। सच तो यह है कि जितना रुमान भरा कमाल का पाकिस्तान विरोध था उतना ही मेलोड्रामाटिक था चम्पा का भारत में बसने का निर्णय। चम्पा का भारत प्रेम जिस राष्ट्रवादी भावुकता से ओत-प्रोत था उसके चलते यह नाटकीयता आनी ही थी। चम्पा की इस सोच की बानगी ‘आग का दरिया’ में कुछ यूँ है, “जब मैं बनारस में पढ़ती थी मैंने दो कौनों के दृष्टिकोण पर कभी नहीं सोचा। काशी की गलियां और शिवालय और घाट मेरे भी इतने ही थे जितने मेरी सखी लीला भार्गव के। फिर यह क्या हुआ कि जब मैं बड़ी हुई तो पता चला कि इन शिवालयों पर मेरा कोई हक नहीं, क्योंकि मैं माथे पर बिंदी नहीं लगती और तपलेश्वरी की आरती उतारने के बाजय मेरी मां नमाज पढ़ती है। बस इसलिए मेरी तहजीब दूसरी है मेरी वफादारियां दूसरी हैं।”⁵⁰ यह पेरिस, लंदन व

कैम्ब्रिज घूमती वुमन आफ द वर्ल्ड से 'डि क्लास' हुई चम्पा का जीवन पर एक पुनरावलोकन है।

यहां यह तथ्य विचारणीय है कि चम्पा का यह राष्ट्रवादी नजरिया कमाल (आग का दरिया) व नईम (उदास नस्लें) की वैचारिक सोच से एकाकार क्यों है ? क्या यह उस नेहरूवादी दृष्टिकोण का परिणाम था जो आधार से अधिक उस अधिरचना पर बल देता था, जिसमें साइंसी मिजाज व आर्थिक प्रगति से सब कुछ ठीक होना था। यह मात्र संयोग नहीं है कि कमाल की तरह नईम भी वामपंथी नेशनलिस्ट होने के बावजूद अंततः पाकिस्तान के कारवां में शामिल हो जाता है। दरअसल कास्मोपोलिटन दुनिया रचे बसे होने के कारण चम्पा, कमाल व नईम का पाकिस्तान बनने व बिगड़ने से कुछ भी दांव पर नहीं था। ये तीनों जो परजीवी जीवन और जिस जड़ विहीनता की मानसिकता में जी रहे थे, उसमें यह महत्वपूर्ण नहीं था कि कौन पाकिस्तान जाता है और कौन हिंदुस्तान में रह जाता है। चम्पा की जड़ विहीनता के मूल में यदि उसका वुमन आफ द वर्ल्ड होता था तो कमाल की जड़ विहीनता के मूल में उसकी रूमानी क्रांतिकारिता एवं परजीविता थी। उदास नस्लें में नईम की त्रासदी के मूल में तो अजरा से विवाह और उसके परिवार पर उसकी निर्भरता ही प्रमुख कारण था। उपन्यास में परवेज के इस कथन से यह स्पष्ट भी है "नईम का यहां (भारत) कुछ भी दांव पर नहीं है।.. न उसका अपना परिवार है न कहने लाय कोई जायदाद। 'हम जहां भी जाएंगे वह हमारे साथ चल सकता है।'" ⁵¹

संदर्भ

1. अब्दुल्ला हुसैन— उदास नस्लें, पृ. 300—01
2. कुर्रतुल ऐन हैदर— आग का दरिया, पृ. 44
3. तदभव, पृ. 50
4. आग का दरिया, पृ. 206

5. जीलानी बानो—ऐवाने गजल, पृ. 29
6. उप.
7. उप. 30
8. उप. 65
9. उप. 68
10. उप. 158
11. उप. 159
12. उप. 164
13. उप. 159
14. उप. 166
15. उप. 216—17
16. उप. 220
17. उप.
18. उप. 221
19. उप.
20. उप.
21. उप. 228

22. उप.
 23. उप. 229
 24. उप. 250
 25. उप. 253
 26. उप. 258—59
 27. उप. 259
-
28. उप. 263
 29. उप. 271
 30. तद्भव, पृ. 52—53
 31. आग का दरिया, पृ. 235
 32. उप.
 33. उदासे नस्लें , पृ. 300—01
 34. आग का दरिया, पृ. 286
 35. उप.
 36. उप. 288—89
 37. उप. 294
 38. उप. 443
 39. उप. 443
 40. उप. 444—45
 41. उप.
 42. उप.
 43. उप.
 44. उप.

45. ਓਧ. 445

46. ਓਧ. 446

47. ਓਧ. 461

48. ਓਧ. 491

49. ਓਧ. 492

50. ਓਧ. 262

51. ਓਦਾਸ ਨਸਲੇਂ, ਪ੍ਰ. 301

अध्याय चार

हिन्दी उपन्यासों में भारत विभाजन और भारतीय मुसलमान

हिन्दी उपन्यासों में भारत विभाजन की पीड़ा की अभिव्यक्ति बहुत ही मर्मतक रूप में हुई है। इस पीड़ा पर लिखने में लगभग पन्द्रह वर्ष लगे। साठ के दशक में विभाजन पर लिखा गया। विभाजन की पीड़ा आज भी विद्यमान है। वीरेन्द्र यादव का कहना बिल्कुल सही है कि ' भारत विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखित. .. उपन्यासों में अभिव्यक्ति भारतीय मुसलमान की उलझन व भारत विभाजन की गुत्थी को न तो मुहम्मद अली जिन्ना के 'दो राष्ट्रों के सिद्धांत से सुलझाया जा सकता है और न ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में इसका हल ढुंढा जा सकता है। "अउरी हम त फिनहूँ जोलहे के जोलहा रह जाइब। का पाकिस्तान में मियां लोग जोलहन से रिस्ता नाता करे लगिहें ?" (आधा गांव, पृ. 225) 'आधा गांव के हाजी साहब का यह सवाल और 'छाको की वापसी' के महमूद खलीफा का यह विश्वास कि "सैयद के पांव दबाने से हो सकतइ कि अल्लाह मियां खुस हो जथिन । हमरा भी जन्नत देयिनत अल्लाह मियां।" (पृ. 37) इस सदिच्छा से अनुत्तरित रह जाता है कि " मुसलमान मुसलमान भाई भाई होता है। इस्लाम ऊंच नीच को नहीं मानता ।" (आधा गांव पृ. 66) 'आधा गांव' के तन्नू (मेजर तनवीरूल हसन) का इस पशोपेश में होना कि ' क्या सचमुच हिंदुस्तानी मुसलमान इस जमीन का नहीं है। वे क्यों एक वतन की जरूरत महसूस कर रहे

है (पृ. 263) और छाको का यह चीत्कार कि ' जेहल दे दे चाहे फांसी, हहू हम त छोड़ के न जैबई अपन घरवा' (पृ. 158) भारतीय मुसलमान की जिस पीड़ी को उजागर करता है उसे हिन्दू मुस्लिम एक रैखिकता के सरल नुस्खे से नहीं समझा जा सकता।" 1

जैसा कि पहले अध्यायों में जिक्र हो चुका है कि भारत विभाजन अंग्रेजों की कूट नीतिक चाल व मुस्लिम द्विराष्ट्रवादियों की सांप्रदायिक राजनीति का परिणाम था। अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यास 'पीढ़ियां' में द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त को दो पात्रों—मुश्ताक और सुमंत के माध्यम से प्रस्तुत किया है। मुश्ताक कहता है:

“सर सैयद ने इंग्लैण्ड जाते वक्त अपनी डायरी में यह लिखा कि अफसोस, मुसलमान तमाम दुनिया में गुर्बत ही भोग रहे हैं, खास तौर से अपने हिंदुस्तान में। गदर के बाद पुराने रईसों और शुरफा लोगों की जो बदतर हालत हुई उससे वह बहुत गमगीन थे।”

“दरअसल वो सिर्फ पुरानी एरिस्ट्रोकेसी की गरीबी से ही दुखी थे मुश्ताक। उनका दुख देखकर इन्हें बहुसंख्यक मुसलमानों की गरीबी का ध्यान न आता था।”

“तो उसमें अजब क्या हैं। डेगची के एक चावल को टटोलकर उन्होंने सारी डेगची की हकीकत को पहचान लिया।”

“फर्क है मुश्ताक, गरीबी की जड़ देखने के लिए बहुजन समाज की हकीकतों को पहचानना होगा। अरे वो लोग जो कल रईस थे और आज गरीब हुए, उनके राज में भी वे मुसलमान वैसे की गरीब रहे जैसे आज हैं। सर सैयद ने अगर गदर में लुटने या अपनी ऐशपरस्ती में रुपया लुटाकर गरीब हो जाने वाले शुरफा लोगों का ही ध्यान ही न किया होता और उनमें अलगाववादी भावनाएँ न

फैलाई होती तो बाद में टू नेशन थ्योरी न पैदा होती । अगर पैदा होती तो गरीब और अमीर का भेद लेकर, हिन्दू— मुसलमानों को लेकर नहीं ।”

“ टू नेशन थ्योरी तो टंडन साहब, जिन्ना साहब ने चलाई । ”

“जिन्ना साहब ने तो कांग्रेस के खिलाफ तुरूप के पत्ते की तरह इस्तेमाल करने के लिए इस टू नेशन थ्योरी को और फैलाव दे दिया । असल में उसकी नींव अलीगढ़ मूवमेंट में पड़ चुकी थी इसीलिए सर सैयद ने मुसलमानों को कांग्रेस में जाने से रोका ।” ²

सर सैयद ने अंग्रेज परस्ती का सबसे पहले एलान किया । उन्होंने कहा: “ अंग्रेज हमारे सरपरस्त हैं, इनके खिलाफ जेहाद नहीं किया जा सकता । सर सैयद शुरू से ही अंग्रेज परस्त थे ।”

“ सर सैयद तो गदर के बाद से ही तमाम शहजादों और शहजादियों की बर्बादी पर टेसुए बहाते हुए अंग्रेज परस्त हो गए थे । ये टू-नेशन की हवा अंग्रेजी हुकूमत के चक्काबू में फंसकर ऊंचे तबके वाले मुसलमानों ने उठाई और इसके लिए अंग्रेजों की शह उन्हें बराबर मिलती रही ।” ³

पाकिस्तान की मांग 1932-33 में कैम्ब्रिज में रहने वाले रहमत अली न विस्तारित की थी । इससे इकबाल ने पाकिस्तान की मांग रखी थी । इकबाल के पुरखे दो चार पुश्त पहले ही मुसलमान बने थे । नवदीक्षित मुसलमान ज्यादा कट्टर और क्रूर थें । ‘पीढ़िया’ का युधिष्ठिर कहता है : “ यह सच है कि जावेद जिन्होंने खुशी से या मजबूरी से अपना धर्म बदला, वह बाहर से आए हुए मुसलमानों से भी अधिक क्रूर और हिन्दू विरोधी साबित हुए । बंगाल में काला पहाड़ नाम से मशहूर एक ब्राह्मण ने ही मुसलमान बनकर हिन्दुओं पर कहर ढाया था । मलिक काफूर भी पहले कपूर खत्री ही था । ऐसे कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं ।” ⁴

‘कितने पाकिस्तान’ में कमलेश्वर पाकिस्तान के असल निर्माता का जिक्र करते हुए लिखते हैं : “क्या आपको मालूम और याद है कि लंदन के एक होटल में सन 1933 में रहमत अली ने जब पहली बार पाकिस्तान की परिकल्पना पेश की थी, तब जिन्ना साहब ने क्या कहा था ?

तो मैं आपको बताता हूँ.... जिन्ना साहब ने कहा था कि यह एक नामुमकिन और गलत सपना है.....माउंटबेटन ने इतिहास के उस नौजवान विद्यार्थी को गौर से देखा जो उससे जिरह कर रहा था। विद्यार्थी ने जिरह जारी रखते हुए पूछा शायद आपको मालूम हो कि सन् 1934 के आसपास जिन्ना साहब राजनीति से इतने खफा और निराश हो गए थे कि बम्बई में लाखों रुपए का अपना फलता – फूलता अदालती पेशा छोड़कर वे लंदन में रहने और वहीं वकालत करने के लिए इंग्लैंड जा रहे हैं।”⁵

इस बार जिन्ना इंग्लैंड से लौटे तो पाकिस्तान का झंडा लेकर। उन्होंने ६ अर्म् के आधार पर अलग देश की पुरजोर मांग पेश की। अंग्रेजों ने उसे खूब हवा दी। यहां तक कि जिन्ना को उनकी बीमारी का पता तक नहीं लगने दिया। कितने पाकिस्तान में लिखा है : “जिन्ना साहब के बाद मुस्लिम लीग का कोई ऐसा कद्दावर नेता नहीं था, जो धर्म के आधार पर दो राष्ट्रों के सिंद्धात की पैरवी करके पाकिस्तान हासिल कर पाता! सच्चाई यही थी न माउंटबेटन साहब ? उनकी बीमारी का पता होता तो इंडिया विभाजन की त्रासदी से बच जाता। – यह माउंटबेटन ने कहा।”⁶

भारत विभान के मुद्दे पर मुसलमान स्पष्ट रूप से दो खेमों में बंटे हुए थे। एक खेमा विभाजन के पक्ष में था और विभाजन के पक्ष में दलीलें देता था। ऐसे ही एक विभाजन समर्थक नेता नए देश की जरूरत बताते हुए ‘आधा गांव’ उपन्यास में कहता है “ हम ऐसे मुल्क में रहते हैं जिसमें हमारी हैसियत दाल में

नमक से ज्यादा नहीं । एक बार अंग्रेजों का साया हटा तो ये हिन्दू हमें खा जाएंगे । इसलिए हिंदुस्तानी मुसलमानों को ऐसी जगह की जरूरत है जहां वे इज्जत से जी सकें ।' यह तकरीर सुनकर वतन परस्त" हाजी साहब गुस्से में मस्जिद से निकल आये । उनकी समझ में तकरीर बिल्कुल नहीं आयी थी । उनकी समझ में यह बात भी नहीं आ रही थी कि मुसलमानों को एक दम से पनाहगार की जरूरत क्यों आ पड़ी है । और अंग्रेजों का साया कहां हैगंगौली में तो अब तक कोई अंग्रेज देखा नहीं गया था । और जब अंग्रेज हिंदुस्तान में नहीं थे, तब आखिर हिंदुओं ने मुसलमानों को क्यों नहीं मार डाला ? और बुनियादी सवाल यह था कि जिंदगी मौत खुदा के हाथ में है या अंग्रेजों और जिन्ना साहब के हाथ में ?" 8

'छाको की वापसी ' में हबीब कहता है " आप जैसे गद्दारों के लिए यकीनन पाकिस्तान एक ख्याली और नकली जन्नत हो सकती है लेकिन सच्चे मुसलमानों के लिए वह एक जीती जागती हकीकत है । वह उनके ख्वाबों और हौसलों की जमीन है । वहां वह हिंदुओं के जुल्म से हमेशा — हमेशा के लिए आजाद हो सकेंगे ।" 9

पाकिस्तान समर्थक पाकिस्तान को सौ मर्ज की एक दवा मानते थे । 'आध् गांव' में लिखा है : "अरे, गफूरन बुआ ।" अब्बास कहता, "एक मरतबा पाकिस्तान बन गया तो मुसलमान ऐश करेंगे.... ऐश ।" वह जोश में आ जाता है और खान अब्दुल गफ्फार खां वगैर को बुरा-भला कहने लगता, " बुआ, ये लोग तो मुसलमानों को हिंदुओं के हाथ बेचने पर तुले हुए हैं...." 10 यूनिस जब अलीगढ़ से आता तो वह भी पाकिस्तान के अलाबा कोई और बात नहीं करता । एक पात्र पूछता है "अच्छा ई बताइए की अलीगढ़ पाकिस्तान चला जइहे की हिंअई रहिए ?" 11 इस मासूस सवाल का जवाब देते हुए पाकिस्तान समर्थक पात्र कहता है

“हम लोगों की कोशिश तो यही है कि अलीगढ़ पाकिस्तान में शामिल हो जाए। क्योंकि वह इस्लामी तहजीब का एक रौशन मिनारा है।”¹²

‘छाको की वापसी’ में बटवारे के समर्थक दलील देते हैं: “हिंदुस्तान की सैकड़ों साल की तारीख गवाह है कि हिंदू और मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते। मजहब, कल्चर, लिबास, जबान— कोई भी तो नुक्ता नहीं जहां दोनों एक—दूसरे से मिलते हो।”¹³

हिंदू—मुसलमान अलग दिख जाते हैं। अपनी वेश — भूषा, रहन—सहन से। ‘तमस’ में लीजा रिचर्ड से पुछती है: “मैं तो अभी तक हिंदू और मुसलमान को अलग—अलग से पहचान भी नहीं सकती। तुम पहचान लेते हो रिचर्ड कि आदमी हिंदू है या मुसलमान? “हाँ, मैं पहचान लेता हूँ।” घर का खानसामा क्या हिंदू है या मुसलमान? “मुसलमान है।” तुम कैसे जानते हो? उसके नाम से, फिर उसकी छोटी सी दाढ़ी से, उसके पहनावे से भी फिर वह नमाज पढ़ता है, यहाँ तक कि उसके खान—पान के तरीके भी अलग हैं”¹⁴

बटवारे के समर्थक मुस्लिम नेता कांग्रेस को हिंदुओं की पार्टी मानते थे। ‘तमस’ में एक पात्र कहता है: “कांग्रेस हिंदुओं की जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की। कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं कर सकती।”¹⁵ जो मुस्लिम नेता कांग्रेस में हैं वे गद्दार हैं। कौम के दुश्मन हैं। उन्हें माफ नहीं किया जा सकता। मौलाना आजाद के बारे में एक पात्र अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए अमर्यादित भाषा पर उतर आता है। “मौलाना आजाद हिंदुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है। गांधी के पीछे दुम हिलाता फिरता है, जैसे ये कुत्ते आपके पीछे दुम हिलाते फिरते हैं। इस पर बयोवृद्ध बड़े धीरज से बोले: आजादी सबके लिए है। सारे हिंदुस्तान के लिए है। हिंदुस्तान की आजादी हिंदुओं के लिए होगी, आजाद पाकिस्तान में ही मुसलमान आजाद होंगे।”¹⁶ जो मुसलमान पाकिस्तान का

समर्थन नहीं कर रहे ऐसे ही मुसलमानों को संबोधित करते हुए 'तमम' उपन्यास में मौला दाद कहता है : "मुसलमान का दुश्मन हिंदु नहीं है, मुसलमान का दुश्मन वह मुसलमान है जो दुम हिलाता हिंदुओं के पीछे-पीछे जाता है ,उनके टुकड़ों पर पलता है।"¹⁷

मुस्लिम नेता मुसलमानों को पाकिस्तान के पक्ष में लामबंद करने के लिए उन्हें धमकाने लगते हैं। "देखना अब जो मुसलमान यहां रह जायेंगे उनकी क्या हालत होती है। सब हिंदु बना लिए जायेंगे। चोटी रखनी पड़ेगी जो यह सब नहीं करेंगे उन्हें चुन-चुनकर मार डाला जाएगा।"¹⁸

पाकिस्तान की मांग जमींदार वर्ग और उच्च जातियों के मध्यवर्ग की ओर से उठाई गई थी। यह अलीगढ़ यूनीवर्सिटी और उत्तर भारत व पंजाब में उठी। 'आंधा गाँव' में अलीगढ़ यूनीवर्सिटी के मुस्लिम लीगी लड़के पाकिस्तान का प्रचार करके सैयदों की बस्ती से लौटते हुए कहते हैं—

"फुस्सू मियां से तो भुगत लिया हमने, जवाद मियां का घर भी देख लिखा। अब्बू मियां गए हुए हैं गाजीपुर। बस हम्माद मियां से भुगत लिया जाए तो दक्खिन पट्टी का सिलसिला खत्म हो जाए। रहे उत्तर पट्टी के मियां लोग तो उनका वोट तो हमारी जेब में है।"

"मगर ये जुलाहे?"

"इनके लिए तो मौलाना आजाद सुब्हानी और अब्दुल बाकी कल ही आ रहे हैं। मैं जुलाहों और बिहारियों से बातें नहीं कर सकता। दोनों साले मादरजाद चूलिए होते हैं।"¹⁹ बदीउज्जमां 'छाको की वापसी' में मुस्लिम लीग की उच्च व मध्यवर्गीय मानसिकता को दर्शाते हुए लिखते हैं: "उनका (हबीब भाई) खयाल था कि जाहिल और गंवार मुसलमान पाकिस्तान न ही जाएं तो अच्छा है। पढ़े लिखे मुसलमानों को ही वहां जाना चाहिए। ये लोग पाकिस्तान के लिए मुफीद होंगे

और इनको भी पाकिस्तान से फायदा पहुंचेगा। छाको जैसे लोग वहां पहुंचने लगे तो मुसलमानों का यह नया मुल्क क्या खाक तरक्की करेगा। इस तरह के लोग हिंदुस्तान में ही रहें तो अच्छा है।”²⁰

उस संदर्भ में वीरेन्द्र यादव की टिप्पणी बिल्कुल सही प्रतीत होती है। वह लिखते हैं “राही मासूम रजा मुस्लिम लीग के पाकिस्तान विमर्श को ग्राम्य संदर्भ देते हुए इस्लामी समरसता व भाई चारे के मिथक का भेदन करते हैं। इसके लिए वे गंगौली की उस आंतरिक बुनावट को उधाड़ते हैं, जिस पर सामंती समरसता का आवरण है। शिया अशराफ की मुहर्रम की मजलिस का एक दृश्य ‘आधा गांव’ में यूं है : “तीन दरे के जिस हिस्से में फर्श नहीं था, उसमें जुलाहे बैठे हुए थे। चमारों व भरों के लड़के प्रसाद के लालच में तीन दरे के बाहर जमीन पर उकड़ू बैठे आपस में लड़ रहे थे।” (पृ. 44) मुस्लिम समुदाय का सामाजिक वर्गीकरण किस तरह आर्थिक संपन्नता का अतिक्रमण करता था, ‘आधा गांव’ में इसकी एक बानगी यूं है : “राकियाने वाले लोग इतने दौलतमंद थे कि जब चाहें खड़े-खड़े पूरे गांव को खरीद लें लेकिन ये कपड़े वाली कुर्सी पर नहीं बैठ सकते थे, इन लोगों के लिए लकड़ी या टीन की कुर्सी रखी जाती थी।” (पृ. 53) जुलाहों, राकियों व सैयदों के बीच ऊंच नीच का यह भेदभाव इतना गहरा था कि गंगौली आने पर सैयद खानदान का अब्बास अलीगढ़ यूनीवर्सिटी के अपने सहपाठी फारुक, जो आल इंडिया मुस्लिम स्टूडेंट फेडरेशन का उपसभापति भी था, से इसलिए नहीं मिलन सकता था क्योंकि वह नीची जाति के राकी अनवारूल हसन का बेटा था। ‘मियां लोगों के सामने तो वह राकियाने जा नहीं सकता था, बड़े जूते पड़ते।” गंगौली में रहते हुए अब्बास फारुक को फारुक भाई नहीं कह सकता था, क्योंकि ‘किसी सैयद जमींदार का लड़का किसी राकी बच्चे को ‘भाई’ कैसे कह सकता था।”²¹

गंगौली के लोगों को पाकिस्तान की खबरों में तो दिलचस्पी है लेकिन वे पाकिस्तान नहीं जाना चाहते

“ए भैया , तोरे पाकिस्तान का का हाल है? ”

“वह तो बन रहा है।”

“काहे न बनिहे, भैया!तू कहि रइयो तो जरूर बनिहे। बाकी ई गंगौली पाकिस्तान में रइहे कि हिंदुस्तान में रइहे ?”

“इ तो हिंदुस्तान में रहेगी। पाकिस्तान में तो सूबा सरहद, पंजाब, सिंध और बंगाल होगा। और कोशिश कर रहे हम लोग कि मुस्लिम यूनीवर्सिटी भी पाकिस्तान में हो जाय।”

“गंगौली के वास्ते ना न करिहयो कोशिश ?”

“गंगौली का क्या सवाल है ?”

“सवाल न है त हममें पाकिस्तान बनने या न बनने से का ?”

“एक इस्लामी हकूमत बन जैयहे! ऐ भाई, बाप –दादा की कबर हियां है, चौक इमाम बाड़ा हियां है, खेत – बाड़ी हियां है। हम कोनो बुरबक हैं कि तोरे पाकिस्तान जिंदाबाद में फंस जाएं।”²²

मुसलमानों का एक वर्ग ऐसा भी था जो पाकिस्तान का विरोध कर रहा था। ‘छाको की वापसी’ में एक पात्र कहता है : “हेड आफिस से खत आया है। सब मुसलमानों से पूछा गया है कि वे हिंदुस्तान में नौकरी करना चाहते हैं, या पाकिस्तान में।”²³ इस के जवाब में कहा गया है : “पूछा गया है तो लिख दीजिए कि हमें पाकिस्तान –वाकिस्तान नहीं जाना है। हम क्यों अपना घरवार छोड़कर परदेस जायें ? ” आगे कहा गया है। “दूसरे लोगों से हमें क्या मतलब! उनको पाकिस्तान जाना है तो खुशी से जायें । मुबारक हो उनको पाकिस्तान जाना। लेकिन हम नहीं जायेंगे अपना घरवार छोड़कर । भला यह भी कोई बात हुई ।

दुसरे कुएं में कूद रहे हैं तो हम भी कूद पड़ें।ऐसी तरक्की किस काम की जिसमें आदमी को अपना देश और घर छोड़ना पड़े। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। ना भाई ऐसे दो पैसों से घर का एक पैसा ही भला। भाड़ में जाये ऐसी तरक्की। ''²⁴

पाकिस्तान नहीं जाते अपने ही देश में रहना चाहते हैं। यहीं पैदा हुए यहीं मरना है। एक पात्र कहता है :''कहीं भागकर जाने की जरूरत नहीं है। यहीं रहो। पैदा करने वाला और मारने वाला तो खुदा है। उसी के हुक्म से जीते-मरते हैं। खुदा जो चाहेगा वही होगा। खुदा से डरो। इन्सानों से क्यों डरते हो ?

''ना बाबू हम तो ना जा सके हैं कहीं इस घर को छोड़कर । इस घर से तो हमारा जनाजा ही निकलिये। हम तो कहे हैं तुम लोग भी मत जाओ। काहे का डर ! क्या यहां का खुदा दूसरा है और वहां का दूसरा ?''²⁵

पाकिस्तान समर्थक गरीब मुसलमानों का पाकिस्तान न जाना ही बेहतर समझते हैं 'छाको की वापसी' में लिखा है :''उनका खयाल था कि जाहिल और गंवार मुसलमान पाकिस्तान न ही जायें तो अच्छा है। पढ़े-लिखे मुसलमानों को ही वहां जाना चाहिए। ये लोग पाकिस्तान के लिए मुफीद होंगे और इनको भी पाकिस्तान से फायदा पहुंचेगा।''²⁶

धर्म के नाम पर पाकिस्तान का निर्माण हुआ। लेकिन धर्म पाकिस्तान को एक न रखा सका। कितने पाकिस्तान 'में लिखा है:''अगर तुम हिन्दू हिंदुस्तान के कदीमी बाशिदें हैं तो हम भी यहीं की कदीमी औलादें हैं हम मुसलमान हो गए तो क्या हुआ... मजहब बदलने से मिट्टी तो नहीं बदल जाती ।''²⁷

छाको की वापसी में पाकिस्तान न जाने का फैसला करते हुए एक पात्र कहता है: ''पाकिस्तान में हमनी सबका का काम बाबू? पेट भरे को दु मुट्ठी चावल, हियां ना मिल तई का। दूसरा देश के जाये के जरूरत! ऊतो सुख से

बेकहना है बाबू।''²⁸

भारत विभाजन पीछे एक तरफ अंग्रेजी शासन की भारत को कमजोर बनाने की साजिश थी, दूसरी ओर राजनीतिज्ञों की उच्च पद प्राप्त करने की स्वार्थ पूर्ण संकीर्ण लालता। विभाजना की पीड़ा और उसके साथ जन्मी विनाशलीला को आम जनता को भोगना पड़ा। भारतीय मुसलमानों की स्थिति अपने ही देश में अत्यन्त दयकीय हो गई थी। एक तरफ मुस्लिम राजनीतिज्ञों द्वारा पाकिस्तान की मांग ने भारतीय मुसलमानों की देशभक्ति पर सवालिया निशान लगा दिया था, दूसरी तरफ देश में फैली सांप्रदायिकता की आग ने और स्वजनों के विद्रोह ने उन्हें विछित कर दिया था। आम भारतीय मुसलमान देश विभाजन के पक्ष में नहीं थे। राही मासूम रजा ने 'आधा गांव' उपन्यास में मुस्लिम राजनीतिज्ञों द्वारा की गई पाकिस्तान की मांग और देश विभाजन के पश्चात सामान्य मुसलमानों की प्रतिक्रिया पर प्रकाश डालते हुए लिखा है: "इनके जिना साहब तो हाथ झाड़कर चले गए कि यहां के मुसलमान जाए जहन्नुम में। ई अच्छी रही। पाकिस्तान बने के वास्ते वोट दे यहां का मुसलमान अऊर जब पाकिस्तान बने तो जिनवा कहे कि यहां के मुसलमान जाये चूलें भाड़ में।"²⁹

भारत का विभाजन हो कर रहा। माउंटबेटन ने सिरिल को भारत पाकिस्तान की सरहदें निर्धारित करने की जिम्मेदारी सौंपी थी। 'कितने पाकिस्तान' में लिखा है "सिरिल रेडक्लिफ ? यह कौन सी बला है ? अर्दली ने पूछा। यह वह शख्स है जिसने हिंदुस्तान पाकिस्तान की सरहदें तय की हैं... यह जुलाई का एक बेहद उमस भरा दिन है। सिरिल रेडक्लिफ माउंट बेटन की स्टडी में खड़ा है वह न तो समाजशास्त्री है न भूगोलविद । लेकिन माउंटबेटन ने उस वकील को सरहदें खींचने का काम सौंपते हुए कहा था— पंजाब और बंगाल का विभाजना आपको करना है। इंडिया में और पाकिस्तान की अंतरराष्ट्रीय सीमा आपको तय करनी है

लेकिन मैं इस में इस काम के योग्य नहीं हूँ। सिरिल ने कहा— पंजाब और बंगाल है कहां ?”³⁰

पाकिस्तान अंग्रेजों की देन है। ‘कितने पाकिस्तान’ में गांधीजी कहते हैं “लेकिन वह बंटवारा अंग्रेजों ने कर दिया? राजघाट से मध्वि सी आवाज आई — यह तो 3 जून की बात है... मैंने तो 1 मई 1947 को ही प्रार्थना सभा में कहा था अगर अंग्रेज नहीं चाहेगा तो जिन्ना साहब को कभी पाकिस्तान नहीं मिल सकता ... मैंने तो कहा था मिन्नत करके कहा था अंग्रेजों! तुम हमें हमारे हाल पर छोड़ दो भगवान भरोसे छोड़ दो। बदअमनी होगी दंगे फसाद होंगे गृह युद्ध होगा, हम देख लेंगे। जो हत्याकांड और अग्निकांड होगा उसमें से हम तप कर निकलेंगे हमारी सभ्यता महाभारत का युद्ध झेल चुकी है।”³¹

गांधी के प्रयास भी बंटवारा रोक न सके। बंटवारा होकर रहा। कितने पाकिस्तान में माउंटबेटन पाकिस्तान बनाने का श्रेय लेत हुए कहता है “आप जो भी कहें देखिए आज सन 1947 के जून महीने की दो तारीख है और मैं कल तीन जून को भारत के विभाजन की घोषणा कर देना चाहता हूँ। आप पाकिस्तान मांग रहे थे। हम आप का पाकिस्तान दे रहे हैं। दुनिया जानती और मानती है कि पाकिस्तान कभी नहीं बन सकता लेकिन ब्रिटिश क्राउन तश्तरी में पाकिस्तान रखकर आपको पेश कर रहा है। अब आप हिचक क्यों रहे हैं ? जिन्ना साहब खामोश रहे। वे कुछ नहीं बोले।”³² कितने पाकिस्तान में भारत के बंटवारे की खबर गांधी को एक कांग्रेसी कार्यकर्ता देता है: बापू! विभाजन हो गया है। गांधीजी ने गहरी सांस ली। अपना थका पैर खींच लिया। फिर सूखे गले में एक घूंट सा लेकर वे धीमे से बोले अच्छा होता, वे मेरे शरीर को बांट लेते.... ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि दे। कहकर उन्होंने आकाश की तरफ देखा।”³³

“कोई चीखा बन गया साला पाकिस्तान।” इस पर ‘कितने पाकिस्तान’ के

लेखक कमलेश्वर की टिप्पणी है: “आसमान की आंखें सूखी हुई थीं। उनमें एक बूंद भी पानी नहीं था। मौसम विभाग के वैज्ञानिकों ने सूचना दी थी कि इस बार धरती वर्षा के पानी से नहीं मानव रक्त की बरसात से सींची जाएगी।”³⁴ इस विभाजन में जितना खून खराबा हुआ उतना दूसरे विश्व युद्ध में वर्मा के फ्रंट पर भी नहीं हुआ था।

इस अध्याय की समाप्ति ‘कितने पाकिस्तान’ के इन शब्दों से करना चाहूंगा: “आज मैं जिस रूप में तुम्हारे सामने हूँ, वही तो मेरा रूप नहीं था। मैंने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में अपना रूप बदला था। वैदिक आर्य यहां आए थे तो युद्ध के हथियार नहीं हाथों में अन्न की बालियां और अन्न उगाने के औजार लेकर आए थे। वे आक्रमणकारी नहीं थे आक्रमण की जरूरत ही क्या थी? धरती खाली पड़ी थी कोई कहीं भी बस सकता था तब भी मैंने अपना रूप बदला था अरीब! सतत परिवर्तनशील हूँ इस लिए सनातन हूँ। यह ठीक है कि इस दौर में जिन्ना ने एक सियासी दीवार खड़ी कर ली, लेकिन कोई दीवार मेरी आवाज और सांसों को नहीं रोक सकती।”³⁵

संदर्भ

1. वीरेन्द्र यादव— विभाजन इस्लामी राष्ट्रवाद और भारतीय मुसलमान, तदभव— अंक—5 पृ. 50
2. अमृतलाल नागर,— पीढ़ियां, पृ. 188—89
3. उप. 363
4. उप. 364
5. कमलेश्वर— कितने पाकिस्तान, पृ. 278—79
6. उप. 284

7. राही मासूम राजा— आधा गांव, पृ. 242
8. उप.
9. बदीउज्जमां गांव— छाको की वापसी, पृ. 112
10. आधा गांव, पृ. 58
11. उप. 239
12. उप.
13. छाको की वापसी, पृ. 78
14. भीष्म साहनी— तमस, पृ. 38
15. उप. 32
16. उप.
17. उप. 82
18. छाको की वापसी, पृ. 18
19. आधा गांव, पृ. 252
20. छाको की वापसी, पृ. 22
21. तदभव पृ. 54
22. आधा गांव, पृ. 154—55
23. छाको की वापसी, पृ. 17
24. उप.
25. उप. 18
26. उप. 21
27. कितने पाकिस्तान, पृ. 103
28. छाको की वापसी, पृ. 59
29. आधा गांव, पृ. 90

- 30. ਕਿਤਨੇ ਪਾਕਿਸਤਾਨ, ਪ੍ਰ. 316
- 31. ਓਪ. 267
- 32. ਓਪ. 55
- 33. ਓਪ. 61
- 34. ਓਪ. 37
- 35. ਓਪ. 221

अध्याय पाँच

धर्मनिरपेक्ष व साम्प्रदायिक विचारधारा इतिहास, धर्म, संस्कृति और भाषा

धर्मनिरपेक्षता

धर्मनिरपेक्षता अंग्रेजी के 'सेक्यूलरिज्म' शब्द का हिंदी अनुवाद है। 'द ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में सेक्यूलरिज्म शब्द का अर्थ है: "वर्तमान जीवन में मनुष्य मात्र का कल्याण ही नैतिकता का एकमात्र आधार होना चाहिए, उसमें ईश्वर अथवा किसी भावी राज्यसत्ता के प्रति आस्था से उत्पन्न किसी धारणा के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए।" ¹

श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते हैं कि धर्मनिरपेक्षता का "अर्थ न अधर्म है, न नास्तिकता, न ही उसका अर्थ है भौतिक सुख-सुविधा पर बल देना। इस सिद्धांत में केवल आत्मा के संबंध रखने वाले मूल्यों की सार्वत्रिकता पर बल दिया गया है जिन्हें प्राप्त करने के मार्ग विभिन्न हैं।" ²

शब्दकोष में 'सेक्यूलरिज्म' का जो अर्थ दिया गया है उसका उल्लेख करते हुए प्रख्यात कानूनविद् श्री पी.बी. गजेन्द्र गडकर कहते हैं: "इस बात पर बल देना आवश्यक है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता इस नकारात्मक कोटि में नहीं आती। वास्तव में भारतीय धर्मनिरपेक्षता मानव जीवन में धर्म की उपयोगिता और सार्थकता दोनों ही को स्वीकार करती है। संविधान के प्रसंग में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ यह है कि भारत में जिन धर्मों का पालन किया जाता है। उन सभी को

समान स्वतंत्रता और संरक्षण का अधिकार प्राप्त है।”³

सैयद आबिद हुसैन ‘धर्मनिरपेक्षता के विषय में लिखते हैं: “हमारे देश के लोगों में, और विशेष रूप से मुसलमानों में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण या धर्मनिरपेक्षता के बारे में बहुत गहरी भ्रांति धारणाएं हैं। वे इसका अर्थ यह समझते हैं कि यह एक ऐसी मनोवृत्ति है जो जीवन के एक सर्वोच्च मूल्य के रूप में धर्म को सर्वथा अस्वीकार करती है। पर वास्तव में धर्मनिरपेक्षता आवश्यक रूप से न तो धर्म की विरोधी है न उसके प्रति उदासीन ही।”⁴

‘सेक्यूलरिज्म’ शब्द के अर्थ के कारण भी कुछ गड़बड़ी उत्पन्न हुई है। इस संदर्भ में मुशीर-उल-हक लिखते हैं। “सेक्यूलरिज्म’ एक अभाषित शब्द था और भारतीय जनता इस कल्पना से भी परिचित नहीं थी। दूसरी भारतीय भाषाओं में जो कुछ हुआ वह ध्यान देने योग्य है, उर्दू में , जो कि भारतीय मुसलमानों की सार्वत्रिक भाषा है, इस शब्द का अनुवाद हमेशा ला-दीनियत या गैर-मजहबियत किया जाता था, जिसका अर्थ होता है ‘अ-धर्म’। इस प्रकार जब भी अंग्रेजी के किसी ऐसे वाक्य का अनुवाद जिसमें ‘सेक्यूलर’ शब्द का प्रयोग किसी भी रूप में किया गया हो, उर्दू में किया जाता था तो उसका भाव अरुचिकर हो जाता था। उदाहरण के लिए एक शीर्षक था: ‘सेक्युलर ट्रेंड्स इन कनटेंपोरेरी मुस्लिम थॉट’ अर्थात् समकालीन मुस्लिम विचारधारा में धर्मनिरपेक्ष प्रवृत्तियाँ, उर्दू में इसका अनुवाद किया गया ‘मुस्लिम जेहन पर लादीनी असरात मौजूदा जमाने में जिसका अर्थ है ‘आधुनिक मुस्लिम विचार पर अधर्मी प्रभाव’।”⁵ लेकिन आगे चलकर इस शब्द का अर्थ स्पष्ट होने लगा।

भारत में ज्यादातर लोग धर्मनिरपेक्षता को अपनी सुविधा के अनुसार अपनाते हैं। जमाअते-इस्लामी (हिंद) ने अपने एक प्रस्ताव में कहा है:

“सरकार की नीति के रूप में धर्मनिरपेक्षता का कोई विरोध नहीं किया जा

सकता, जिसका अर्थ यह है कि धार्मिक आस्थाओं के आधार पर किसी के साथ कोई भेदभाव या पक्षपात नहीं वरता जाएगा। जमाअत ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वर्तमान परिस्थितियों में वह चाहती है कि सरकार का धर्मनिरपेक्ष रूप बना रहे... परंतु अगर कुछ लोग इस उपयोगजनित व्यावहारिक सुविधा से आगे भी इसका कोई गहरा दार्शनिक अर्थ अपने विचार में रखते हैं तो उनसे हमारा मतभेद है। ये दार्शनिक व्याख्याएं मूलतः पश्चिमी देशों में उत्पन्न हुई हैं और उनके साथ ऐसी भावना और ऐसा इतिहास जुड़ा हुआ है जिसका हमारे स्वभाव और हमारी आवश्यकताओं से कोई संबंध नहीं है।”⁶ इस पर टिप्पणी करते हुए मुशीर-उल-हक कहते हैं: “यह दोरुखा रवैया अकेले जमाअत का ही नहीं है, भारत के अधिकांश उलमा भी इसी से सहमत हैं। उनमें से बहुतों का विश्वास है कि राज्य सत्ता को तो धर्मनिरपेक्ष रहना चाहिए पर मुसलमानों को उस धर्मनिरपेक्षता से बचाकर रखा जाना चाहिए।”⁷

मुशीर-उल-हक आगे कहते हैं: ‘जो मुसलमान धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता का तो समर्थन करते हैं पर अनिवार्यतः धर्मनिरपेक्षता के आदर्श का विरोध करते हैं, क्या वे मक्कार या इस्लामी शब्दावली के अनुसार मुनाफिक हैं ? जी नहीं कदापि नहीं। उनकी दृष्टि में, धर्मनिरपेक्षता और धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता दो सर्वथा भिन्न बातें हैं। उनका विश्वास है कि धर्मनिरपेक्षता एक ऐसी दार्शनिक विचारधारा है जो धर्म की विरोधी है और धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता एक ऐसी राजनीतिक संस्था है जो अपने नागरिकों के लिए धार्मिक स्वतंत्रता का आश्वासन करती है।’⁸

धर्मनिरपेक्षता के प्रश्न पर मुसलमानों को तीन दलों में बांटा जा सकता है। “एक तो वे जो धर्मनिरपेक्षता को सिरे से ही अस्वीकार करते हैं और उसे ‘ला-मजहबियत’ और ‘कुफ्र’ का दर्जा देते हैं। दूसरी श्रेणी में वे मुसलमान आते हैं जिन्हें आम तौर पर ‘आधुनिकतावादी’ और ‘धर्मनिरपेक्षतावादी’ कहा जाता है

। उनके अनुसार धर्मनिरपेक्षता ला-मजहबियत नहीं है। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि इस वर्ग का आम मुसलमानों के साथ अधिक संपर्क नहीं है। उनके बारे में शक किया जाता है कि वे शरीअः का उतना 'एहताराम' (सम्मान) नहीं करते जितना कि आमधारणा के अनुसार एक मुसलमान को करना चाहिए। वे पाठकों और श्रोताओं के अधिक विस्तृत और 'मिले-जूले' वर्ग की सुविधा के लिए बहुधा अपने विचार अंग्रेजी में ही व्यक्त करना पसंद करते हैं; जब भी वे अपने विचार विशेष रूप से धार्मिक समस्याओं के बारे में, उर्दू में व्यक्त करने की कोशिश करते हैं, तो उलमा को उनके लेख 'तर्करहित' और बहुधा 'दूसरों के प्रेरित किए हुए' लगते हैं।

तीसरी कोटि में अधिकांश उलमा और मुस्लिम जनसाधारण आते हैं। वे धर्मनिरपेक्षता को वहीं तक स्वीकार करते हैं जहां तक वह धर्म के क्षेत्र में राज्यसत्ता की निष्पक्षता को व्यक्त करती है। वे दूसरी कोटि के लोगों के आरोपित शरीअः विरोधी रवैये के कारण उनका पर्दा फाश करने और उनकी निंदा करने के लिए हमेशा बहुत मुस्तैद और बेचैने रहते हैं। चूंकि किसी भी चीज को शरीअः की परिधि से बाहर नहीं समझा जाता इसलिए धर्मनिरपेक्षता के नाम पर शरीअः के महत्व को घटाने की हर कोशिश पर तीव्र असंतोष प्रकट किया जाता है। उदाहरण के लिए एक बार सेक्यूलर फोरम (दिल्ली) के अध्यक्ष मीर मुश्ताक अहमद ने कहा था कि धर्मनिरपेक्षता का मतलब है संसार के सभी धर्मों के प्रति सकारात्मक सम्मान'(मुस्तब -एहताराम) का रवैया। इस पर दिल्ली की जमीअते-उलमा के मौलाना अखलाक अहमद कासिमी ने उनकी अच्छी तरह खबर ली। उनके अनुसारी धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या 'सम्मान' के आधार पर नहीं बल्कि सहिष्णुता के आधार पर की जानी चाहिए। वह कहते हैं:

“सकारात्मक सम्मान गतिहीनता को ही जन्म दे सकता है। दो सर्वधा

विरोधी दृष्टिकोण एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता तो बरत सकते हैं पर उनसे एक दूसरे का सम्मान करने की आशा नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, किसी मानवतावादी से उन लोगों को सम्मान करने के लिए कैसे कहा जा सकता है जो विभिन्न मनुष्यों के बीच उनके जन्म की परिस्थितियों के आधार पर भेद भाव बरतते हैं? हम जानते हैं कि जो लोग निजी स्वामित्व के पक्ष में हैं वे पूरी सच्चाई के साथ उन लोगों का सम्मान नहीं कर सकते जो सामूहिक स्वामित्व में विश्वास रखते हैं। यह बात सभी क्षेत्रों में सार्थक है और धर्म भी उन्हीं में से एक है।”⁹

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए प्रो० बिपिन चन्द्र लिखते हैं : “धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी धर्मनिरपेक्ष राज्य में साम्प्रदायिक हिंदू या मुसलमान हितों का अस्तित्व नहीं स्वीकारता। उसके अनुसार साम्प्रदायिकता सामाजिक यथार्थ का आंशिक अथवा एक तरफा दृष्टिकोण नहीं है, अपितु गलत और अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। सांप्रदायिक दृष्टि गलत या संकीर्ण इसलिए नहीं है कि यह केवल एक समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है अपितु वह गलत इसलिए है कि वह यह भी नहीं करती। संप्रदायवादी न केवल राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करने में अपितु उस समुदाय को प्रतिनिधित्व करने में असफल रहा जिसका प्रतिनिधि होने का वह दावा करता है।”¹⁰

सांप्रदायिकता

धार्मिक पहचान के आधार पर स्वयं को परिभाषित करना सांप्रदायिकता है। धर्म आधारित विभाजन सदैव से रहा है। ऐसी दृढ़ मान्यता संप्रदायवादियों की रही है। संप्रदायवादियों के अनुसार, असली व्यक्ति वही होता है जो अपने संप्रदाय से जुड़ा होता है। उनके लिए भारतीय राष्ट्र जैसी चीज न तो कभी थी और न कभी हो सकती है। भारत सदैव से ही ‘धार्मिक समुदायों का महासंघ’ रहा

है और आगे भी इसी रूप में रहेगा। संप्रदायवादी मानते हैं कि अपने समुदाय विशेष के सदस्यों के हित, दृष्टिकोण और जीवन-शैली एक रूप होती है। मुसलमान संप्रदायवादी की दृष्टि में तो कोई भी जनतांत्रिक शासन बहुसंख्यक समुदाय का शासन होता है। उसका काम अल्पसंख्यक समुदाय पर हावी होना और उसका दमन करना है। परिणाम स्वरूप उसकी यह धारणा बन जाती है कि राष्ट्रवाद और जनतंत्र उसके समुदाय के लिए खतरा है।¹¹

भारत में सांप्रदायिक तनाव और दंगों की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में हुई। 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजों ने हिंदू-मुस्लिम के बीच अलगाव को बढ़ावा दिया। अंग्रेज जान गए कि हिंदू-मुस्लिम अगर एक हो जाते हैं तो अंग्रेजी साम्राज्यवाद के लिए खतरा उत्पन्न करेंगे। उन्होंने एक सोची-समझी रणनीति के तहत हिंदू-मुस्लिम के बीच सांप्रदायिक तनाव पैदा किया। इस संदर्भ में विपिनचंद्र ने लिखा है: “भारतीय इतिहास में सांप्रदायिक पहचान प्राचीन और मध्यकालीन अतीत के किसी भी कालखंड में विद्यमान नहीं थी।”¹²

सांप्रदायिकता मध्ययुग का अवशेष या अतीत की विरासत नहीं है। यह तो एक आधुनिक विचारधारा है जिसमें विगत विचारधाराओं और संस्थाओं के कुछ अंश और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सम्मिलित कर लिया गया है।

सांप्रदायिकता का आधार मध्यवर्ग ही होता है। इस वर्ग के कतिपय लोगों को सांप्रदायिकता से कुछ अल्पकालिक लाभ अवश्य होते हैं अर्थ व्यवस्था तथा सरकारी नौकरियों में। जैसे आजकल के आरक्षण लाभ मध्यवर्ग के कतिपय हिस्से ही उठा पा रहे हैं। अतः प्रतीयमान रूप से सांप्रदायिकता और जातिवाद मध्यवर्ग को वास्तविक प्रतीत होती है।

इसमें संदेह नहीं कि समाज के ऊंचे तबके को ही सांप्रदायिकता से अधिक लाभ होता है क्योंकि वहां प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है। विपिनचंद्र ने लिखा

है: “सांप्रदायिकता से उन्ही लोगों को अधिक लाभ मिलने की संभावना थी जो हाईकोर्ट के न्यायाधीश विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर अथवा कुलपति या किसी अस्पताल के निदेशक पद के आकांक्षी थे।”¹³

निम्न मध्यवर्गों के लोगों का सांप्रदायिकता से लाभ होने की संभावना उतनी नहीं थी जितना कि उनके सांप्रदायिकता के शिकार होने की। सांप्रदायिकता से किसानों और मजदूरों को किसी भी प्रकार का लाभ नहीं मिल सकता। यह सही है, सांप्रदायिक अपील ने कस्बों और शहरों में बढ़ते हुए लंपट तबके के लोगों को विशेष रूप से आकर्षित किया। लेकिन यह भी उतना ही सही है सांप्रदायिक संगठनों ने मध्यवर्ग के युद्धों के अतिरिक्त कोई अन्य मुद्दा नहीं उठाया।¹⁴

सांप्रदायिकता के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए बिपिन चंद्र ने लिखा है: “सांप्रदायिकता ऐसी बुराई है जो एक बार आरंभ हो जाने पर अपने आप बढ़ती रहती है। यहां कहीं राजनीतिक शून्य उत्पन्न होता है, अथवा इसकी वृद्धि के अनुकूल सामाजिक परिस्थितियां होती हैं, इसका आगमन हो जाता है।”¹⁵

भारत में सांप्रदायिकता अंग्रेजों द्वारा पैदा की गई। ‘आग का दरिया’ में कुर्रतुल ऐन हैदर ने लिखा है: “अंग्रेजों से पहले इस देश में हिंदू-मुस्लिम दंगे नहीं होते थे— युद्ध होते थे। और यह युद्ध राजनैतिक होते थे। हिंदू राजाओं की फौज में मुसलमान जनरल और सिपाही होते थे। मुसलमानों की ओर हिंदू लड़ते थे। ये राजनैतिक गुटबंदियां थीं। फिर अंग्रेजों ने दुनिया पर अपनी यह नयी खोज प्रकट की कि इस मुल्क में हजारों जबानें बोली जाती हैं। हजारों कौम बसती हैं। हिंदू-मुसलमान एक दूसरे से घृणा करते हैं। यह मुल्क एक मुल्क नहीं है। यह एक केवल भूगोल में ही है। उनकी लिखी इतिहास की किताब के द्वारा

घृणा का बीज बोया गया। मिसाल के लिए एक, कर्नलटॉड का 'राजस्थान का इतिहास' ही देख लो या उन्नीसवीं सदी के ईसाई मिशनरियों के सफरनामे देखो। लेकिन, तुमको सन् 57 याद है। जब इसी लखनऊ में हिंदू अमीर—उमरा और रिआया ने विरजीस कदर की हुकूमत को— जो बहरहाल मुसलमान हुकूमत थी बचाने के लिए अपनी जानें लड़ा दीं। मगर हमारा आज का धार्मिक और मजहबी पागलपन...।" ¹⁶

अंग्रेजों ने वहाबी आंदोलन को हिंदू विरोधी आंदोलन के रूप में पेश दिया। कुर्रतुल ऐन हैदर लिखती हैं कि चम्पा कहती है, "कल रात में वहाबी आंदोलन के बारे में पढ़ रही थी। उन्होंने निरंतर साठ वर्ष तक अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी और फांसियां पायीं, मगर ब्रिटिश— सरकार ने बड़ी चालाकी से उनके जेहाद का रुख हिंदुओं और सिखों की तरफ मोड़ दिया।" ¹⁷

इतिहास

इतिहास का सांप्रदायीकरण साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने अपने कूटमंतव्यों की पूर्ति के लिए किया। जेम्स मिल ने सांप्रदायिक आधार पर इतिहास का काल विभाजन किया हिन्दू काल, मुस्लिम काल। इन इतिहासकारों का मूल उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि—

भारतीयों पर सदैव क्रूर तानाशाहों और उच्छृंखल प्रशासकों का शासन रहा है। यदि ब्रिटिश शासन भी स्वेच्छारी और तानाशाही प्रवृत्ति का है तो इसमें हर्ज ही क्या है ? हमारा राज्य कल्याणकारी, न्यायप्रिय और कानून पर आधारित है।

भारत पर सदैव हमले होते रहे। आर्यों से लेकर तुर्कों तक। यदि हम हमलावर हैं तो क्या हुआ ? हम तो बर्बर नहीं हैं, सभ्य हैं और तुम्हें सभ्य

बनायेंगे। मुसलमान भी तो विदेशी थे, यदि हम विदेशी हैं तो क्या हुआ ?

भारत में विदेशी शासन वाले अंग्रेज नहीं थे, उन्होंने तो केबल एक बर्बर और अमानुषिक विदेशी शासन के स्थान पर एक सभ्य और मानवीय शासन ही दिया है।

मुसलमानों ने बड़े ही क्रूर और भयावह ढंग से हिंदुओं का दमन किया है, उन्हें गुलाम बनाया है और उनके साथ दुर्व्यवहार किया है। हमने तो हिंदुओं को इससे मुक्त किया है। हिंदुओं को अंग्रेजों का शुक्रगुजार होना चाहिए क्योंकि अंग्रेजों के शासन में उनकी हालत पहले से कहीं अच्छी है।

हिंदू मुसलमान सदैव से एक दूसरे के खून के प्यासे रहे हैं, अतः किसी तीसरे पक्ष अर्थात् अंग्रेजों की अनुपस्थिति में वे कभी शांतिपूर्वक नहीं रह सकते।¹⁸

एच. एस. एलियट ने अपनी पुस्तक 'द हिस्टरी आफ इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंस' की भूमिका में लिखा है: "इस ग्रंथ में ये तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं कि मुसलमानों ने हिंदुओं को किस कदर मारा, उनके जुलूसों पूजा अर्चना पर प्रतिबंध लगाए, मूर्तियों को तोड़ा, मंदिरों को ध्वस्त किया, जबरन धर्म परिवर्तन किया, अनेक निषेध, प्रतिबंध, स्वत्व-अपहरण हत्या, नहसंहार, जैसे असहिष्णुता पूर्ण कदम उठाए और इन्हें लागू करने वाले तानाशाहों की मध्ययता एवं विलासिता के विवरण भी दिए गए हैं।

इन इतिहासकारों का लक्ष्य है— 'अपनी देशी प्रजा को यह समझाने का कि हमारे राज की नरमी और न्याय परायणता से उन्हें कितने फायदे हैं।'।

उदीयमान राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों जिन्हें लेखक 'बढ़-चढ़कर बोलने वाले बाबू लोग' कहता है— को अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत की स्थिति की सचाई समझाना ताकि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना करना छोड़ दें।¹⁹

मुस्लिम लीग के नेताओं ने इतिहास का खूब सांप्रदायीकरण किया। मो०

अली जिन्ना ने मार्च 1940 के मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में भाषण देते हुए कहा: “पिछले 1200 सालों के इतिहास में एकता नहीं हो सकी है और यह तथ्य इस बात का गवाह रहा है कि इस दौरान भारत हमेशा हिंदू भारत और मुस्लिम भारत में बंटा रहा है।”²⁰

जिन्ना ने 1941 में कहा: “मुसलमान, जब वह धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बना और उनमें से अधिकांश का यह परिवर्तन हजार साल पहले हुआ था तो आपके हिंदू धर्म और दर्शन के हिसाब से वह जाति च्युत और म्लेच्छ हो गया था और सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर किसी भी रूप में हिंदुओं का उनमें कोई वास्ता नहीं रह गया था। इसलिए अब वह एक बिल्कुल अलग व्यवस्था, न केवल सामाजिक और धार्मिक से जुड़ा हुआ है और वह धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से उसी स्पष्ट भिन्न तथा विरोधी सामाजिक व्यवस्था में रहता आया है। मुसलमानों को एक बिल्कुल अलग दुनिया में, अलग समाज में, अलग दर्शन और आस्था में रहते हुए हजार साल से ज्यादा वक्त हो गया है।”²¹

मोइन शाकिर ने अपनी पुस्तक खिलाफत टू पाकिस्तान में लिखा है : “भारत में लगभग बारह सदियों से पाकिस्तान रहा है।”²²

मोहम्मद अली जिन्ना ने 1941 में लाहौर में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा: “हमारी मांग हिंदुओं से नहीं क्योंकि सारा हिंदुस्तान तो कभी हिंदूओं के पास रहा ही नहीं। मुसलमानों ने सारे हिंदुस्तान पर कब्जा करके सात सौ साल तक उस पर राज किया था। अंग्रेजों ने हिंदुस्तान मुसलमानों से लिया था।”²³ जिन्ना ने 1942 में कहा कि यदि अंग्रेज भारत का शासन मुसलिम लीग के हाथ सौंपते हैं तो “मुसलमानों को हिंदुस्तान का राज देकर वे अपने किए की भरपाई ही करेंगे क्योंकि उन्होंने मुसलमानों से ही इसे लिया था।”²⁴

शौकत अली ने 1929 में कहा, “हिंदुओं को तो गुलामी की आदत है और वे गुलाम ही रहेंगे।”²⁵ ऐसा ही जेड ए. सुलेरी ने ‘माई लीडर’ में लिखा: “हिंदुस्तान हिंदुओं का नहीं हो सकता, क्योंकि उन्हें तो एक हजार साल पहले ही जीत लिया गया था।”²⁶

लार्ड डफरिन ने ‘रिपोर्ट ऑफ इंडियन कांस्टीट्यूशनल रिफार्मस’ में लिखा: “मुसलमान पांच करोड़ लोगों का राष्ट्र है— जिनकी स्मृति में वे दिन अंकित हैं, जब दिल्ली की गद्दी पर बैठकर वे हिमाचल से कन्याकुमारी तक राज करते थे।”²⁷

सी. मैशर्ट ने हिंदू-मुसलमानों की दुश्मनी का जिक्र करते हुए लिखा: “हिन्दू और मुसलमानों की यह पुरानी दुश्मनी आज भी बनी हुई है। भारत के लगभग सभी प्रांतों में हिंदुओं की संख्या मुसलमानों से ज्यादा है, फिर भी लगता है कि वे मुसलमानों से डरते हैं। मुस्लिम प्रभुत्व की याद करके वे ऐसा कोई खतरा नहीं उठाना चाहते जिससे मुसलमानों का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो, दूसरी तरफ मुसलमान अपने गौरवशाली अतीत को याद करते हैं और भविष्य के प्रति आशावान हैं।”²⁸

सांप्रदायिक मुसलमानों का मध्यकालीन इतिहास के प्रति लगाव रहा है। “संप्रदायवादी मुसलमान शासकों को उत्साही धर्म योद्धा मानते थे, जिसका मुख्य लक्ष्य इस्लाम का प्रसार था। इसे प्राप्त करने का उनका तरीका था मंदिरों का ध्वंस और बलपूर्वक धर्म परिवर्तन करना...। मुसलमान लेखक इस बात के लिए मुसलमान शासकों की भर्त्सना करते हैं कि उनमें इस्लाम के प्रति सच्ची भावना नहीं है, क्योंकि उनके राज्य में मूर्तिपूजा होती है और काफिर काफी फल फूल रहे हैं।”²⁹

सर्वप्रथम शिक्षित मुसलमान और तदोपरांत मुस्लिम संप्रदायवादी इस्लामी,

तुर्की, अरबी उपलब्धियों के स्वर्ण युग की बात करने लगे। उनके नायक, मिथक और सांस्कृतिक परम्पराएं प्राचीन मध्ययुगीन भारत के न होकर मध्य एशिया के मध्ययुगीन इतिहास होते थे। अनेक मुसलमानों ने तुर्की की ओर रुख किया। सैयद अहमद खान द्वारा फैज (तुर्की) टोपी को लोकप्रिय बनाना भी इसी का प्रतीक था। उनके लिए कदाचित् यह स्वीकार करना संभव भी नहीं था कि उनके धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय सभ्यता का पतन हुआ था। अनेक मुसलमान मध्ययुगीन भारतीय समाज, राजनीति और सांस्कृतिक के सभी या कम से कम अधिकांश पहलुओं की हिमायत करने लगे।

कट्टर संप्रदायवादी तो औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता की नीतियों, हिंदुओं पर जजिया लगाये जाने की भी हिमायत करने लगे। उसे भारत में दार-उल-इस्लाम का संस्थापक और एक महान और उदान्त शासक घोषित किया गया। साथ ही इस्लाम को कमजोर करने के लिए अकबर की भर्त्सना की गई। इस्लामी विनाश की धारणा के मुकाबले उन्होंने अंधविश्वास, जाति एवं छूआछूत प्रथाओं और असमानताओं से जकड़े हिंदू समाज पर समता और न्याय पर आधारित इस्लाम के लाभकारी प्रभाव पर बल देना आरंभ किया।³⁰

यह तो निश्चित है कि विगत स्वर्ण युगों एवं अतीत की आन-बान की खोज में अनेक शिक्षित मुसलमानों और लगभग सभी मुस्लिम संप्रदायवादियों ने मध्ययुगीन मुस्लिम शासकों तथा पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के साम्राज्यों को लोकप्रिय बनाया।

अज्ञानी लोगों के हाथों यह प्रयास कभी कभी बड़ी हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न कर देता था। उदाहरण के लिए 1945-46 में फीरोज खां नून ने चंगेज खान द्वारा किए गए नरसंहार को यह समझकर गौरवान्वित किया कि वह मुसलमान विजेता था क्योंकि उसके नाम के साथ खान जुड़ा हुआ था जैसा कि

सर्वविदित है, चंगेज खान मंगोल धर्म को मानने वाला था जिसका देवता था टेंगिरी और उसने बड़ी संख्या में मुसलमानों का संहार किया था।³¹

सुलेरी 1940 के दशक में मुस्लिम लीग के प्रमुख विचारक थे। सुलेरी का कहना था कि 1930 के दशक में जिन्ना के पुनः भारत आगमन से पहले तक मुसलमान संकट की घड़ी से गुजर रहे थे और खतरे का सामना कर रहे थे। उन्हें डुबो दिए जाने अथवा 'नेस्त-नाबूद कर दिए जाने' का खतरा था। 1757 से लेकर मुसलमानों का सारा इतिहास ही अंग्रेजों द्वारा हिंदुओं के समर्थन एवं मुसलमानों के दमन की कहानी रही है। जहां हिंदू आगे बढ़ रहे थे। वहीं मुसलमानों को खास तौर से पतन के विशाल सागर में ढकेल दिया गया था। इतना ही नहीं हिंदू तो एक जुट हो रहे थे और मुसलमानों में फूट पड़ रही थी। 19 वीं सदी के अंत तक एक सदी पुरानी समृद्धि एवं नई सत्ता से मिलने वाले संरक्षण के परिणाम स्वरूप जहां हिंदू संगठित मजबूत शिक्षित— और अधिक महत्वपूर्ण तो यह कि— अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति सचेत हुए थे, वहीं एक सदी तक होने वाले दमन ने मुसलमानों को दुर्गति के दलदल में फेंक दिया था। यह तो सैयद अहमद खान थे जिन्होंने एक समूची कौम के पतन को रोका। जो भी हो, 19 वीं सदी के अंत तक जबकि दूसरे संप्रदाय के पास एक सदी का दमन और अज्ञान था, दोनों के हित एक कैसे हो सकते थे ? 1920 और 1930 के दशको में जिन्ना के मंच पर आने तक पराजित मुसलमानों का पतन और भी बढ़ चुका था 1934 तक मुसलमानों के मन मस्तिष्क पर हिंदुओं का लगभग पूर्ण रूपेण कब्जा हो चुका था। विजेता हिंदुओं के दल असंगठित, भ्रमित और हतोत्साहि मुसलमानों के दलों को हिंदुत्व के घेरे में समेटने में लगे थे।³²

धर्म

धर्म को विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

डा. राधाकृष्णन

“धर्म परम मूल्यों में विश्वास और उन मूल्यों को उपलब्ध करने के लिए जीवन की पद्धति का प्रतीक होता है” ³³

धर्म वह अनुशासन है, जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई और कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है; काम, क्रोध, और लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को उन्मुक्त करता है, संसार को बचाने का, महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है।” ³⁴

रामधारी सिंह दिनकर

“धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवत्व का विकास है। धर्म न तो पुस्तकों में है न धार्मिक सिद्धांतों में। वह केवल अनुभूति में निवास करता है। धर्म अंधविश्वास नहीं है, धर्म अलौकिकता में नहीं है, वह जीवन का अत्यन्त स्वाभाविक तत्व है।” ³⁵

जान क्यूबर

“धर्म सांस्कृतिक व्यवहारों का प्रतिमान है जिसके अंतर्गत पवित्र एवं मान्य विश्वासों, सांवेगिक भावनाओं आदि का व्याप्त क्रियान्वयन होता है।” ³⁶

इमील दुख्रीम

“धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और आचरणों की वह समग्र व्यवस्था है जो इस पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय में संयुक्त करती है।” ³⁷

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधारपर यह कहा जा सकता है कि धर्म, आस्था व्यवस्था के रूप में एक विचार धारा है। अपने धर्म की चेतना, अपनी आस्था में

विश्वास , श्रद्धा का होना सांप्रदायिक होना नहीं है। सामाजिक और प्रेरक विचारधारा के रूप में धर्म का प्रयोग सांप्रदायिकता नहीं होता। चीन के ताइपिंग, आरंभिक मसीही मत, जर्मनी के कृषक युद्ध, अठारहवीं शती के सतनामी, सिखों, जाटों के विद्रोह की विचारधारात्मक प्रेरणा धर्म था। लेकिन धर्म को संप्रदायवाद में आसानी से लाया जा सकता है। पी. सी. जोशी ने लिखा है: “ धर्म को राजनीति में इतनी सरलता से इसलिए लाया जा सकता है, क्योंकि पूर्व – पूँजीवादी युग के लोगों के जीवन का बड़ा हिस्सा धर्म से प्रभावित रहता है। राष्ट्रवाद और वर्ग भावना के अभाव में धर्म ही उनके जीवन का सर्वाधिक भावात्मक पक्ष होता है।”³⁸

‘आधा गाँव’ उपन्यास में गाजीपुर के गंगौली गांव का विशेषकर शीआ-मुस्लिम जन जीवन में व्याप्त धार्मिक भावना तथा मोहर्रम जैसे धार्मिक उत्सव का पर्याप्त विवरण के साथ यथार्थवादी शैली में चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के पात्रों का पारिवारिक सामाजिक एवं आर्थिक जीवन सभी कुछ धार्मिक भावना से परिचालित है बकर ईद के पश्चात् से ही मोहर्रम की तैयारियों में सभी ग्रामवासी लग जाते हैं। मोहर्रम के अवसर पर ग्रामीण वातावरण ‘बोल मुहम्मदी या हुसैन’³⁹ की ध्वनि से गूंज उठता है। लोग मातमी लिबास तैयार करवाते हैं। मरसिए तथा नौहे की ब्याजें निकालकर मश्क (अभ्यास) किया करते हैं। राही के शब्दों में, “गंगौली के सैयद- खानदानों में मोहर्रम एक रूहानी ईद से कम नहीं हुआ करता था। नौहों की धुनें इस एहतियात से बनायी जाती थीं कि ईद की सिवैयां शर्मा जाएं।”⁴⁰

मोहर्रम में हर एक खुशी को निषिद्ध तथा हराम माना जाता है। औरतें अपनी कलाइयों को सूनी कर देती हैं। इस महीने में गांव वाले न तो अच्छा खाते-पीते हैं, न मनोरंजन तथा शादी ब्याह का नाम लेते हैं। सईदा जैसी

प्रगतिशील विचारों वाली लड़की भी इन मान्यताओं को स्वीकार करती हुई कहती है, 'तौबा-तौबा! खुदा हममें माफ करे। आठ मोहर्रम को हंसने वाले पर खुदा की फिटकार ।'' ⁴¹

'आधा गांव' उपन्यास में महीनों पूर्व से ही ताजिये बनाये जाते हैं। बड़े ताजिये के नीचे से स्त्रियां अपने बच्चों को निकालती हैं और मन्नतें मांगती हैं। अपनी मुरादों की मन्नतें मांगने के लिए लोग गाजीपुर से ही नहीं लखनऊ से भी आया करते हैं। कई तो चन्दन शहीद और फुल्लन शाह के मजार पर मन्नतें भी मांगती हैं। यद्यपि किसी की मन्नत पूरी नहीं होती तो इससे उनका धार्मिक विश्वास विचलित नहीं होता क्योंकि " मन्नतें तो मन्नतों से टकराती ही रहती हैं। किसी-न-किसी की मन्नत पूरी होती ही रहती है और इसलिए विश्वासों की दुनिया में कोई तूफान नहीं आता। जिनकी मन्नत पूरी नहीं होती वह यह सोचकर चुप हो जाता है कि खुदा उसका इम्तहान ले रहा है। " ⁴² इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मनौतियों में यहां के ग्रामीण अधिक विश्वास करते हैं।

भारतीय समाज का बहुलवाद व धार्मिक सौहार्द गंगौली की सामंती संरचना में कुछ यूं घुला मिला था कि मुहर्रम के ताजिए के पीछे यहां "हजार पांच सौ आदमियों की भीड़ होती। औरतों बच्चों को बड़े ताजिए के नीचे से निकालतीं। मन्नते मानतीं। जारी पढ़तीं और शरबत चढ़ातीं। ये औरतें सैदानियां नहीं हुआ करती थीं। क्योंकि सैदानियां तो डोली बिना घर से निकल ही नहीं सकती थीं। ये तो गांव की राकिनें, जुलाहिनें, अहीरनें और चमारिनें होती थीं।" ⁴³ यह वह गांव जहां ताजिए निकलते वक्त अपनी उलती न गिराये जाने पर ब्राह्मणी बेवा मीर साहब से उलती गिरवाने की चिरौरी करती है और किसी अनिष्ट की आशंका में नूरुद्दीन शहीद की मजार पर यह बिनती करती है, हे इमाम साहिब! हमार लइकन के कुछऊ हो गइल ना त ठीक ना होई।" ⁴⁴ बदी

‘उज्जमा के ‘छाको की वापसी’ का रामधनी भी मुहर्रम का “सिपर उठावा कैसे छोड़ दे लोग क्या सोचेंगे इस बारे में ? और सवाल सिर्फ लोगों के सोचने का नहीं है। उसे पाप नहीं लगेगा क्या? सिपर नहीं उठायी तो इमाम साहेब सराप नहीं देंगे क्या?”⁴⁵

रामधनी ही “मुसलमान बच्चों का खतना भी करता है। मुहर्रम की नौ तारीख को उसे बीसियों बच्चों का खतना करना पड़ता है। उससे अच्छे पैसे भी मिल जाते हैं। शादी ब्याह का न्यौता देने भी रामधनी ही जाता हैं। बारात में दुल्हा का छतर वही पकड़ता है।”⁴⁶

यही धार्मिक सौहार्द ‘ऐवाने गजल’ में भी हैं सीताराम ब्राह्मण थे, मगर इर्द-बकरीद को बड़ी पाबंदी से आकर वाहिद हुसैन के यहां शीर-खूरमा खाते। उनके यहां हर पूजा और त्यौहार में वाहिद हुसैन ओर उनके बीवी बच्चे शरीक होते थे।”⁴⁷

‘आग का दरिया’ मे धर्म का जनवादी करण किया गया है। इस्लाम का देशज रूप प्रस्तुत किया है। सूफी भारतीय पद्धति पर कीर्तन करते हैं।

यदि मुहम्मद अवतार न लेते ?

तो अल्लाह की हुकूमत त्रिलोक में स्थापित न होती।

नमो नमो हे अब्दुल्ला और आमना!

जय हो मक्का नगरी की, और सारे औलिया की!

और, बीबी फातमा की, जो सारे जग की माता है!

जय हो उत्तर के हिमालय की, जिसके चरणों में

सारी दुनिया फैला है!

जय हो पूर्व से उदय होते सूर्य की!

अब मैं वृन्दावन के सामने झुकता हूँ।

.....
जय हो मुसलमानों के संप्रदायों की!

जय हो धरती और पवित्र संखानदी की!

जय हो! जय हो! जय हो!

इस पर कुर्तुल ऐन हैदर की टिप्पणी है: “धर्म अपने आसपास की स्थिति, अपने वातावरण और पृष्ठभूमि से किस प्रकार प्रभावित होता है! किस प्रकार उसकी जड़ें एक अनजानी मिट्टी में फैलती हैं।”⁴⁸

‘आग का दरिया’ में धार्मिक सहिष्णुता के बारे में लिखा है: “धार्मिक अलगाव को प्रजा का शुद्ध निजी मामला समझा जाता है। मुहर्रम में बलवे नहीं होते, न मस्जिदों के सामने बाजा बजाया जाता है। हिंदू ताजियादारी करते हैं और मुसलमान दीवाली मनाते हैं। कैसा उल्टा जमाना है। नवाब—बहू—बेगम हर साल होली मनाने फैजाबाद से अपने बेटे के पास लखनऊ आती हैं। सारे राज्य में अनगिनत हिन्दू राजाओं ने मस्जिदें और इमामबाड़े बनवा रखे हैं। लखनऊ से अस्सी मील की दूरी पर बहराइच है; जिसे हजारों बरस पहले श्रावस्ती कहते थे; जहां सालार मसऊद गाजी की दरगाह है। जेठ के महीने में उनका मेला लगता है लाल नेजे और झंडे उठाये डफली बजाते हजारों हिन्दू—मुसलमान देहातों से उनके मजार की ओर चल पड़ते हैं। बंगाल के मुसलमान सूफी सत्यपीर की तरह जो सत्य नारायण बन चुके हैं। सालार मसऊद उर्फ बाले मियाँ ने अवध के हिंदुओं के लिए बालानाथ का दर्जा प्राप्त कर लिया है। उनके मकबरे के पास का अग्निकुण्ड, बालारब की धूनी कहलाता है। दहगाह की नजर—भेंट, मुजाविर और पूजा के चढ़ावे पण्डे लेते हैं। पण्डों और मुजाविरों से इस आय के बंटवारे के संबंध में आपस में समझौता है।”⁴⁹

‘आग का दरिया’ में रामलीला का वर्णन करते हुए कुर्तुल ऐन हैदर

लिखती हैं: “दिन बीतते गये । सूर्यणखा की नाम कटी, रावण जला ,भरत मिलाप हुआ, दुबले—पतले लड़के मुँह पर पाउडर और सफेदा पोते, पन्नी के नकली मुकुट पहने, राम और लक्ष्मण बने, बड़े गर्व के साथ गतिमय सिंहासन पर सवार हुए। इंसानों को उनमें भगवान के दर्शन हुए। छुट्टियाँ समाप्त होने पर वह लखनऊ वापस आ गयी। कार्तिक के महीने में अमावस की रात दीपमालिका ने रौशन कर दिया। छोटी और बड़ी दिवाली मनायी गई। घर—घर लक्ष्मी की पूजा की गई। “आज लोना चमारी की अमलदारी है।” गुलफिशां के बरामदे में खाला—बेगम ने अपना भाव प्रकट किया— “बच्चो, बाहर मारे मारे मत फिरो। आज की रात जाने कितने जादू—टोने होंगे।” सामने चौराहे पर एक दोने में मिठाई रखी थी और दिया चल रहा था। जाने कौन वहां रख गया था। “याद है ? एक बार जादू की हंडिया उड़ती हुई आयी थी और हमारे अहाते में गिरी थी।” तलअत ने कहा। वे घास पर आकर आकाश को देखने लगे।” आज की रात लक्ष्मी अपनी सवारी उल्लू पर बैठी सारी दुनिया पर उड़ती फिर रही है। जाने वे किस—किस के दरवाजे में प्रवेश करेंगी! ...बाहर घास पर मत जाना बच्चो खाला—बेगम ने फिर आवाज लगायी। “बरसात का साँप दिवाली का दिया चाटकर बिलों में जाता है।”

जगह जगह चौराहों और गलियों में जुआ हुआ। रामऔतार और कदीर जुआ खेलने गये, “अरे अगर आज जुआ न खेला तो अगले जन्म मां छछून्दर की जोनी मिली।” रामौवतार ने कहा । फिर भैयादूज का त्योहार आया। हरिशंकर कालीन पर चढ़ा बैठा था और निर्मला उसके माथे पर तिलक लगाकर उसके सामने मिठाई परोस रही थी। “गंगा के भाई की तरह मेरा भैया अमर रहे।” उसने मंत्र दोहराया। फिर अगहन और पूस के पाले ने पेड़ों पर चाँदी के पत्र चढ़ा दिए। गांवों में नौटंकियों के गीत गूंजे। चौपालों में महाभारत की कहानियां दोहरायी गईं। सफेद अटंगी साड़ियाँ पहने ईसाई औरतें गाती फिरीं, “आहा मसीहआया

सरे आस्मां, सरे आस्मां !' खिचड़ी का त्योहार आया तो लोग माघमेला नहाने त्रिवेणी चले। बसन्त पंचमी में घर-घर सरस्वती-पूजा की गयी। इंसानों ने अपनी कल्पना में देखा कि गोरे रंग की देवी सफेद है। साड़ी पहने, सफेद कँवल पर बैठी स्वच्छ दैवी जल पर तैर रही हैं। कुम्हारों के हाथ की बनाई हुई मिट्टी की मूरत में भी उन्हें देवता के दर्शन हुए। फिर फागुन की ऋतु आयी। शिवरात्रि की तैयारियां की गयीं। निर्मला ने 'सिंघाड़ेवाली कोठी' के ठाकुरद्वारे में बिल्व की पत्तियां, धतूरा और चावल थाली में रखकर शिव की आरती उतारी, और दिल में कहा हवॉट नॉनसंस।"

मुहर्रम का हंगामा हुआ। घर-घर घास, मोम और कागज के ताजिये तैयार किये गये। इंसानों ने अपनी सारी कला उन पर खत्म कर दी। इन कागजों, पन्नियों और रेशम के पालनों, ताबूतों और ताजियों में भी उन्हें खुदा का जलवा नजर आया। इमामबाड़ों में चरागाँ हुआ। गली-कूचों से पीलू और दुर्गा में शोक-गीतों की आवाजें उठीं। सारे वातावरण ने शोक का लबादा ओढ़ लिया। हर व्यक्ति हुसैन का शोक मनाने लगा। (सिब्तैनबाद के इमामबाड़े में आठवीं की मजिलस के बाद एक ईसाई फकीरनी ने चम्पा का दामन पकड़कर कहा, "बिटिया सिवा गमेहुसैन के खुदा आपको कोई गम न दे। मौला के नाम पर एक डबल देती जाइये!) शाहनजफ के इमामबाड़े में चरागाँ के दिन हमेशा की तरह बिजली कुमकुमों से बने हुए अक्षरों में "हिज मैजेस्टी किंग गाजीउद्दीन हैदर" का नाम जगमगाया। मार्च के महीने में सारा वातावरण गुलाल और अबीर से लाल हो गया। हुलियारे सड़कों पर कबीर गाते फिरे।⁵⁰

राजनेता धर्म का इस्तेमाल अपने स्वार्थ के लिए करते हैं 'कितने पाकिस्तान' में लिखा है; "वक्त न हिंदू है, न मुसलमान, इतिहास गवाह है कि रजवाड़ों और सल्तनतों के लोग हिंदू या मुसलान तो थे लेकिन इसके स्वार्थों और महत्वकांक्षाओं

ने ही इन लोगों को और ज्यादा हिंदू या मुसलमान बनाया था। जब जब ये अपनी ताकत से अपनी महत्वाकांक्षाओं को हासिल नहीं कर सके हैं। तब-तब ही इन्होंने धर्म का दामन थामा है, नहीं तो मुझे बताइए कि कितने राणा, महाराणा और सूबेदार शहंशाह हैं जिन्होंने धर्म की खातिर अपनी गद्दी का परित्याग किया हो ?” ⁵¹

संस्कृति

‘संस्कृति’ शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है— संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना, साफ करना, परिष्कृत करना आदि समसामयिक संदर्भों में यह शब्द हिंदी भाषा में अंग्रेजी के ‘कल्चर’ शब्द के पर्याय के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। ‘संस्कृति मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियों और योग्यताओं के साथ समाज के विकास का ऐतिहासिक निर्धारित स्तर है। यह स्तर लोगों के जीवन और कार्यकलाप के संगठन के रूपों एवं प्रकारों में तथा लोगों द्वारा निर्मित भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों में व्यक्त होता है।” ⁵² और “संस्कृति प्रातः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं।” ⁵³ मानव विज्ञान की शास्त्रीय दृष्टि से संस्कृति हम उन व्यवहार प्रकारों की समग्रता को कहते हैं, जिन्हें मानव को प्रकृति की देन नहीं है अपितु उसके द्वारा ही अर्जित की जाती है। ⁵⁴

‘हिंदी शब्द सागर’ में संस्कृति शब्द का अर्थ शुद्धि, मानसिक विकास, सफाई, संस्कार, सुधार, परिष्कार, सजावट, पूरा करना, रहन सहन, भीतर बाहर से संस्कार की गई सभ्यता आदि है। ⁵⁵ मानक हिंदी कोश में संस्कृति शब्द का अर्थ साफ करना, परिमार्जित, अलंकृत करना, भाव आदि दिए गए हैं। ⁵⁶ हिंदी विश्वकोश में संस्कृति शब्द का अर्थ शुद्धि, सुफाई, संस्कार, सुधार, परिष्कार,

सजावट, सभ्यता, रहन-सहन आदि हैं।⁵⁷

उपर्युक्त शब्द कोश परक संस्कृति शब्द के अर्थ विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृति शब्द अर्थ विकास की सहज यात्रा को पूरा करके अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुंचा है। हिंदी शब्द सागर में यह शब्द व्युत्पत्तिपरक अर्थ की परिधि में रहता हुआ व्यावहारिक और रुढ़िपरक अर्थ की ओर संकेत करता है। मानसिक विकास और सभ्यता ऐसे ही अर्थ संकेत है। हिंदी विश्वकोश में भी संस्कृति शब्द को इस सीमा तक ले गया है जिस सीमा तक हिंदी शब्द सागर। कमोवेश मानक हिंदी कोश में भी संस्कृति शब्द को हिंदी शब्द सागर और हिंदी विश्वकोश की तरह ही अर्थ प्रदान किया गया है।

कोशगत अर्थ संदर्भों पर विचार करने के बाद हम विभिन्न विद्वानों द्वारा दी हुई संस्कृति की परिभाषाओं पर विचार करेंगे। संस्कृति की परिभाषा देना अथवा थोड़े शब्दा में उसका वर्णन करना बहुत कठिन है। यद्यपि विभिन्न विद्वानों और विचारकों द्वारा संस्कृति की परिभाषाओं को अपने-अपने ढंग में बांधने का प्रयास करती है। लेकिन कोई भी एक परिभाषा संस्कृति को पूरी तरह परिभाषित करने में सफल हो सकी, ऐसा कहना बहुत मुश्किल है। फिर भी कुछ विद्वानों की विचारधाराएं संस्कृति के विविध पहलुओं को विभिन्न दृष्टिकोण से अवश्य बांधने में सफल हो सकी हैं। जो इस प्रकार है—

मेकाइवर और पेज के अनुसार: “संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन तथा आनन्द में पाये जाने वाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है।”⁵⁸

ई. वी. टायलर के अनुसार: “संस्कृति उस समुच्चय का नाम है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नीति, विधि, रीति-रिवाज तथा ऐसी क्षमताओं और आदतों का समावेश होता है, जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अपनाता है।”⁵⁹

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने संस्कृति को बौद्धिक अथवा मानसिक जीवन माना है।⁶⁰

जवाहर लाल नेहरू संस्कृति पर अपना मत देते हुए कहा है कि “संसार में सर्वोत्तम मानी या कही गई बातें इनसे अपने आप को परिचित करना ही संस्कृति है।”⁶¹ एक जगह और उन्होंने कहा: “संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढीकरण या विकास या उससे उत्पन्न आस्था है।”⁶²

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार: “संस्कृति जीवन का एक तरीका है— पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक अभ्युदय के उपर्युक्त देहन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारादि की भूषण भूत सम्यक चेष्टाएं एवं हलचल ही संस्कृति है।”⁶³

मंगलदेव शास्त्री के अनुसार: “सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले इन आदर्शों की समष्टि को संस्कृति समझना चाहिए।”⁶⁴

संस्कृति की उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन और विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृति से तात्पर्य संस्कार संपन्नता, जीवन के परिष्कार एवं आचरणगत विकास से है। इसके साथ ही साथ यह भी स्पष्ट होता है कि संस्कृति व्यक्तिगत न होकर सामूहिक विकास है। जो संस्कारों के द्वारा संपन्न होता है। मनुष्य अपने जीवनयापन के लिए जिस धर्म, दर्शन, इतिहास, रीति—नीति आचार परम्परा से लेता है उन सबका समन्वय ही संस्कृति है। जिन संस्कृति में समय और परिस्थिति के अनुसार अपने रूप को विकसित करने की जितनी अधिक क्षमता होगी, उतनी ही अधिक कालजयी और जीवंत वह संस्कृति बनी रहेगी। लोगों की जीवन सक्रियता की स्वयं उनके हाथों और उनकी बुद्धि से निर्मित परिस्थितियों और साधन ही संस्कृति है। यहां मेरा आशय लोगों के अस्तित्व के अप्राकृतिक परिवेश से उनकी सक्रियता के औजारों से तथा साथ ही उनके कौशल ज्ञान और जीवन मूल्यों के बारे में उनकी धारणाओं से है, जिनकी

अभिव्यक्ति लक्ष्यबद्ध सक्रियताओं में होती है।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम काफी समय से एक साथ रह रहे हैं। इनकी जो संस्कृति निर्मित हुई है, उसे साझी संस्कृति या गंगा-जमुनी तहजीब कहते हैं। इस संस्कृति के निर्माण का कारण यह है कि अधिकांश मुसलमान यहां धर्म परिवर्तन द्वारा मुसलमान बने थे जो अपने धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों और आस्था-विश्वासों से जुड़े हुए थे। नए लोक प्रिय धर्मों में सर्वसंग्रहवाद की प्रबल भावना थी। साझी लोकप्रिय संस्कृति एवं शैली को महत्व दिया जाता था। विवाह आदि एवं अन्य सामाजिक रीति-रिवाजों और व्यवहारों में समानता दिखाई देती थी या कम-से-कम पारस्परिक प्रभाव दिखाई देता था, जिसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के प्राभाव शामिल थे। हिंदू और मुसलमानों के साझे पीर, संत, मजार, दरगाह और पवित्र स्थान होते थे। यहां तक कि साझे देवी देवता भी होते थे। देश के विभिन्न भागों में अनेक सर्व संग्रहवादी संप्रदाय विकसित हो गए थे। उदाहरण के लिए जाति प्रथा के कतिपय तत्व जैसे खान पान के निषेध और विवाह संबंधी निषेध आदि दोनों में साझे थे।

अठारहवीं शती में अवध, बंगाल एवं देश के अन्य अनेक भागों में आमलोग ही नहीं शासक वर्ग के लोग भी होली, दीवाली, दशहरा, दुर्गापूजा, ईद इत्यादि त्यौहार मिलजुल कर मनाते थे। जहां उत्सव साथ-साथ नहीं मनाए जाते थे, वहां भी कुछ सीमा तक पड़ोसियों के बीच आदान-प्रदान रहता था। ताजियों में लगभग सभी शरीक होते थे, विशेष रूप से हिंदू स्त्रियां क्योंकि ऐसी मान्यता थी कि ताजियों के नीचे गुजरने से उनकी गोद भर जाएगी। ज्योतिष, हस्तरेखा, सामुद्रिक एवं पंचांग साझे रूप से इस्तेमाल किए जाते थे। धर्मनिपेक्ष नायकाओं पर आधारित या साझे धार्मिक चरित्रों, प्रतीकों एवं मिथकों से लेकर एक साझी साहित्यिक परम्परा भी विकसित हो चुकी थी।⁶⁵

पूर्वी पंजाब में धर्म परिवर्तन करने वाले की जाति पर उसके धर्म परिवर्तन का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता था। समस्त सामाजिक कबीलाई, राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टियों से मुसलमान राजपूत, गूजर या जाट उतना ही राजपूत, गूजर या जाट है जितना कि उसका हिंदू भाई। उसके सामाजिक रीति-रिवाजों में कोई परिवर्तन नहीं होता, उसके कबीलाई विधि-निषेध भी ज्यों-क-त्यों बने रहते हैं, विवाह एवं विरासत संबंधी उसके नियमों में कोई परिवर्तन नहीं होता। लगभग एक मात्र परिवर्तन यही होता है कि वह चुटिया नहीं रखता और अपनी मूंछों का ऊपरी हिस्सा मुंडवा लेता है। मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ता है और विवाह की हिंदू विधि में मुसलमानों के रीति-रिवाज और जोड़ लेता है।... यहां तक कि वह पहले की भांति अपने देवी-देवता भी पूजता है या उसकी मूर्ति-पूजा यदि बंद हुई थी तो वह भी हाल ही में।⁶⁶

सच तो यह है कि लोगों के लिए सामाजिक एवं कुटुम्ब कबीले के रीति-रिवाज धार्मिक नियम परम्पराओं से कहीं बढ़कर ही हैं। जहां पूरे देहात का आचार-व्यवहार हिंदू हो, जैसा कि पूर्वी पंजाब में है, तो वहां मुसलमान भी एक प्रकार से हिंदू ही होता है। जहां आचार व्यवहार में सिंधु देश से परे के आचार-व्यवहार का प्रधान्य हो, जैसा कि पंजाब के सीमा प्रांत में है, तो वहां का हिंदू मुसलमान जैसा ही होता है। हिंदू मुसलमान का फर्क धर्मिक उतना नहीं है जितना कि कौमी।⁶⁷

अंतर्विवाह के संबंध में मुहम्मद ने जो छूटें दी हैं, दिल्ली संभाग के जाटों पर उनका कोई प्रभाव नहीं है। वह तो हिंदू पुरोहितों एवं धर्मशास्त्रों में दी गई अन्य छोटी छूटों का भी लाभ नहीं उठाता और अपने कबीले के नियमों से ही बंधा रहता है जोकि दानों धर्मों के कानून कायदों से कहीं अधिक कठोर है। किंतु मुलतान संभाग के मुसलमान जाटों पर पठानों एवं बलोचों का प्रभाव ज्यादा है

वह मुहम्मद द्वारा स्थापित विधि-निषेधों को उतना नहीं मानता या केवल उन्हें ही नहीं मानता, जितना अपने सीमा प्रांतीय पड़ोसियों के कबीलाई नियम कानून को । ये नियम कानून उसके धर्म के नियम कानूनों से तो अधिक कठोर हैं ही, किंतु उसके धार्मिक नियम-कानूनों की तुलना में सरल भी हैं । मेरी मान्यता है कि पश्चिमी पंजाब में जातियों एवं कबीलों द्वारा आरोपित नियम-कानूनों में जो ढील या कठोरता दिखाई देती है, वह हिंदू और मुसलमानों दोनों में ही पड़ोसी सीमा प्रांतीय कबीलों के प्रभाव का हाथ धर्म परिवर्तन से कहीं अधिक है । पूरब के किसानों में सामाजिक एवं कबीलाई रीति-रिवाज चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, भारतीय है, जबकि पश्चिम के लोगों, हिन्दू और मुसलमान दोनों के ही रीति-रिवाजों पर पूरी तरह नहीं तो काफी हद तक अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान का प्रभाव है । दोनों ही स्थितियों में ये नियम-कानून और रीति-रिवाज धार्मिक होने की अपेक्षा कबीलाई या कौमी अधिक है ।⁶⁸

जाति और धर्म के निषेध के कारण परस्पर विवाह संबंध नहीं होते थे, किंतु ऐसे वर्ग विद्यमान थे जिनमें हिंदू और मुसलमान दोनों ही आते थे— किसानों, जमींदारों, व्यापारियों, कारीगरों, सिपाहियों, सरकारी नौकरों इत्यादि वर्ग । शहर हो या गांव, किसी एक वर्ग के भीतर रहन-सहन के तौर तरीकों, पहरावे, तमीज —तहजीब इत्यादि की ओर से हिन्दुओं और मुसलमानों में भेद करना कठिन था । स्त्रियों की स्थिति, विवाह की उम्र यहां, तक कि विवाह की कुछ रस्में भी, एक वर्ग के हिंदू और मुसलमान सदस्यों में एक-सी होती थीं । हिंदुओं और मुसलमानों के लिए एक दूसरे के पर्व-त्यौहार में भाग लेना स्वाभाविक बात थी । इस सब के पीछे मानदंडों की वह समानता निहित थी जिसका निर्माण हिंदुओं और मुसलमानों के नैतिक आदर्शों ने मिलकर किया था । साथ ही किसी देश की आस्था की अभिव्यक्ति के एक अन्य माध्यम के रूप में चित्रकला सोलहवीं

सदी और इसके बाद भी हिंदू और मुसलमान कलाकारों के हाथों में समान रूप से फली-फूली और सही अर्थों में भारतीय चित्रकला बनी । संगीत और नृत्य की विधाएं बन गईं और वैसा ही बनी रहीं।⁶⁹

बंगाल में साझी संस्कृति और सहजीवन का वर्णन करते हुए बी. सी. पाल लिखते हैं: “हमारे गांव में तरह-तरह के लोग रहते थे। हमारे यहां लगभग सभी हिंदू जातियां थीं, अपितु मुसलमान भी बड़ी संख्या में थे। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच लगभग वैसा ही खुला ओर दोस्ताना व्यवहार था जैसा कि हिंदुओं में पिताजी के घर में, पूजा को छोड़कर, सभी घरेलू उत्सवों पर पड़ोस के मुसलमान जमींदार साहब को निमंत्रित किया जाता था। वे पूजा में शामिल नहीं हो सकते थे, यद्यपि ईद के त्यौहार पर तौहफों का आदान-प्रदान बराबर होता था और शादी ब्याह में एवं मृत्यु के अवसरों पर भी वे एक भी वे एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल होते थे।

“मुझे अभी तक याद है कि हमारे ये पड़ोसी, हमारे घर श्राद्ध या किसी अन्य मृतक कर्म के अवसर पर कपड़े का थान और कुछ रुपए भेजते थे और उनके घर में कोई उत्सव होता, हम उनके तालाब से मछलियां पकड़ सकते थे। इन बातों में हिंदू और मुसलमान पड़ोसियों के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था, जैसा कि हिंदू किसानों के साथ होता था। हां, जात-पात और धर्म की सीमाएं अवश्य रहती थीं। फिर भी हमारी धार्मिक आस्थाएं एवं रीति-रिवाज कभी इस सामाजिक सौहार्द और संबंधों के आड़े नहीं आए। दोनों समुदायों के सदस्यों में एक दूसरे के लिए पूर्ण सहिष्णुता थी।”⁷⁰

1930 में पंजाब की सांस्कृतिक एकता की एक मिसाल इस तरह है “यहां पक्की ईंटों से बनी दो मस्जिदें हैं जो बहुत अच्छी हालत में हैं। इनके अहातों में सभी धर्मों के मुसाफिर एवं बारातों के ठहरने के लिए अलग-अलग कमरों की

व्यवस्था की गई है। इन कमरों में हिंदू बरात भी रुकती थी। गाना-बजाना भी चलता था जो नमाज के वक्त बंद कर दिया जाता था। एक लंबे जमाने से गांव के लोग इसके आदी थे।” ⁷¹

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार के अपने जुड़वां गांवों—जीरादेई और जमापुर के संबंध में अपनी आत्मकथा में लिखा है: “स्पष्ट था कि गांव के जीवन में धर्म रचा बसा था, और हिंदुओं और मुसलमानों के बीच पूरा सामंजस्य था। मुसलमान हिंदुओं के होली के हुडदंग में शामिल होते थे। दशहरा, दीवाली और होली के अवसर पर मौलवी जी विशेष रूप से शायरी की रचना करते थे।... हिन्दू लोग भी ताजिए निकालकर मुहर्रम में शरीक होते थे। जीरादेई और जामापुर के संपन्न हिंदुओं के ताजिए गरीब मुसलमानों के ताजियों से ज्यादा बड़े और चमक वाले होते थे।... ताजियों के जुलूस में बड़ा जोश रहता था और हिंदू मुसलमान का भेद पूरी तरह से समाप्त हो जाता था।” ⁷²

हिंदू-मुसलमान में कुछ खान पान संबंधी विधि निषेध जरूर थे, लेकिन इससे उनके सहजीवन में कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता था। अपने हिंदू मित्रों का सत्कार करने के लिए मुसलमान मेजबान अक्सर हिंदू हलवाई की दुकान से या अपने किसी अन्य हिंदू मित्र के यहां से मिठाई इत्यादि किसी हिंदू से मंगवा लिया करते थे। इसमें किसी प्रकार का अपमान नहीं समझा जाता था। उदाहरण के लिए जब शिवाजी का पौत्र अपनी माता के साथ औरंगजेब ने बंदी बनाया तो बादशाह ने इस बात की बड़ी ताकीद की कि उनके भोजन संबंधी एवं अन्य सामाजिक विधि निषेधों का पूरा सम्मान किया जाए। राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि “जब त्यौहारों आदि के अवसर पर मिठाई बांटी जाती थी तो सभी उसे लेने के लिए हाथ आगे करते थे, किंतु हिंदू-मुसलमानों के हाथ का पानी नहीं पीते थे। मुसलमान हिंदुओं की भावना को समझते थे और इस का जरा भी बुरा नहीं

मानते थे।” 73

प्रो. बिपिन चंद्र ने अपने पैतृक शहर का वर्णन करते हुए लिखा है कि मेरे पैतृक शहर में जो तब पंजाब में पड़ता था, यह आम रिवाज था कि मध्यवर्गीय हिंदू अपने मुसलमान पड़ोसियों की ईद के अवसर पर अपने हिंदू मित्रों और पड़ोसियों के घर पर मिठाई भिजवाते थे। अंतर केवल इतना था, वह मिठाई हिंदू हलवाई की दुकान से सीधे मित्रों के घर जाती थी। मुझे अपने बचपन की एक नाटकीय घटना अभी तक याद है जो मुझे निरंतर 1937 से पहले के सामाजिक परिवेश का स्मरण कराती रहती हैं। एक दिन मैं इंटरवल के समय चाट खा रहा था कि मेरा मुसलमान दोस्त दौड़ता हुआ मुझसे आ टकराया। जब उसे अहसास हुआ कि मेरी चाट उसने छू ली है तो उसने मुझ से कहा कि मैं वह चाट फेंक दूँ अन्यथा मैं भ्रष्ट हो जाऊंगा। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव और रोशन ख्याल होने के कारण और शायद इसलिए भी कि मुझे यश का लालच था, मैंने ऐसा करने से इंकार कर दिया। इस पर उसने मेरे माता पिता से शिकायत करने की धमकी दी। मैं तब भी न माना तो उसने मेरे हाथ से चाट जबदस्ती छीनकर यह कहकर फेंक दी कि वह अपने दोस्त को नरक में नहीं भेजना चाहता।” 74

बिपिन चंद्र ने प्रो. मूनिस रजा के माध्यम से पूर्वी उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक एका का वर्णन करते हुए लिखा है: “पूर्वी उत्तर प्रदेश के उनके पैतृक शहर गाजीपुर में सामाजिक दूरी का आधार वर्ग भेद था, धर्म नहीं। खान पान संबंधी निषेधों का तो पालन किया जाता था किंतु वे समस्त सामाजिक विभेदन के भीतर ही समाहित हो जाते थे। जब किसी मुसलमान के घर में दावत होती थी तो सभी उच्च वर्ण व उच्च वर्ग के हिंदू और मुसलमान पहले और एक साथ भोजन करते थे, यद्यपि उनके भोजन के स्थान अलग अलग होते थे। सभी विपन्न वर्गीय और निचली जातियों के हिंदू और मुसलमान एक ही समय किंतु अलग अलग स्थानों

पर भोजन करते थे। अतः सामाजिक अंतर भिन्न भोजन स्थानों में नहीं अपितु भिन्न भोजन समय में प्रतिबिम्बित होता था। उच्च वर्गीय हिंदू राजपूत और ब्राह्मण अपने मुसलमान मेजबान के साथ एक ही समय भोजन करते थे, जबकि मुसलमान जुलाहा और हिंदू नौकर बाद में, एक ही समय भोजन करते थे। निस्संदेह 1930 के दशक में अनेक शिक्षित हिंदू और मुसलमान विशेष रूप से डाक्टर, वकील और सरकारी नौकर एक साथ बैठकर भी भोजन करते थे।

मूनिस रजा के अनुसार अनेक धार्मिक वृत्ति की मुसलमान वृद्धाएं हिंदुओं के हाथ का पकाया हुआ या परोसा हुआ खाना नहीं खाती थीं। इसमें केवल धार्मिक शुद्धता का ही विचार रहता था, किसी प्रकार की सामाजिक श्रेष्ठता का नहीं। श्रेष्ठता का विचार उन वृद्धाओं में वर्ग, जाति या नस्ल का हो सकता था, जैसे कि ईरानी, तुर्की, अरबी या हिंदुस्तानी मूल की।⁷⁵

उपर्युक्त विवरण के बाद यह कहा जा सकता है कि हिंदू-मुसलमानों के बीच भेद और सामाजिक निषेध के रूप विभिन्न प्रातों, नगरों, कस्बों, गांवों और वर्गों में अलग-अलग स्तर और भिन्न भिन्न प्रकृति के होते थे।

उच्च वर्ग और पेशेवर लोगों के बीच सामाजिक आदान प्रदान के अधिक अवसर रहते थे जिसमें धर्म आड़े नहीं आता था। बड़े शहरों के मुकाबले गांवों और छोटे कस्बों में भी सामाजिक अंतर बहुत कम था।

गांवों में हिंदू मुसलमान एक साझे सामाजिक आर्थिक ढांचे के भीतर रहते थे, उनका सांस्कृतिक जीवन कतिपय धार्मिक कर्मकांडों को छोड़कर एक जैसा था।

प्रायः एक ही वर्ग के हिंदू मुसलमानों में रोट्टी बेटी के व्यवहार को छोड़कर पर्याप्त सामाजिक आदान-प्रदान रहता था और इसमें धर्म कहीं आड़े नहीं आता था।

‘आग का दरिया’ में कुर्रतुल ऐन हैदर अवध की सांस्कृतिक ऐकता के बारे में लिखती हैं : “यह नगर (लखनऊ) अयोध्या और बनारस के हजारों साल पुराने संगीत का संरक्षक है। यहां की भैरवी सारे देश में प्रसिद्ध है। यहां का बच्चा-बच्चा संगीत कला से परिचित है। यहां मुहर्रम के जमाने में वातावरण में विहाग, पीलू और सोहिनी घुल जाती हैं। बेगमात के पहलों की चारदीवारी में लयदार, गलेवाज डोमनियां बारह महीने संगीतोत्सव मनाती रहती हैं। चौक के कमरे, उपनगर के उद्यान और बारहदरियां कलाविद, डेरेदार वेश्याओं की तानों से गूंजती हैं। चांदनी रातों में कहार और मजदूर मुंडेरों पर बैठकर बिहरा गाते हैं। ब्रज के रासधारी रामलीला का स्वांग रचाते हैं। ब्राह्मण नर्तक एक घुंघरू बजा कर नाच रहे हैं और आसपास सारे में मौत का घुंघरू बज रहा है। पिछले सत्तर-अस्सी साल से यह नाटक फैजाबाद और लखनऊ की रंगभूमि पर खेला जा रहा है। इन पात्रों का महत्व बाहर वाले नहीं समझ सकते। इन सब ने मिलकर उस दुनिया की रचना की है जो अवध के निवासियों— हिंदू और मुसलमानों की अपनी दुनिया है। ये लोग कभी रुलाते हैं, कभी हंसाते हैं। इनके जैसे नाम और कहीं न होंगे। इनकी ऐसी भाषा, रुचि और पहनावा कहीं न मिलेगा। ये गरीब-अमीर, औरत-मर्द, जो ठाकुर इमामबख्श और लाला हुसैन बख्श, मिर्जा मेदू और नवाब कम्मन कहलाते हैं और इमामन गहरी और मिर्जा जंगली और सुखबचन लौड़ी और नवाब बसंती बेगम—ये सब रोते हैं, हंसते हैं, गाते बजाते हैं, लड़ते हैं। मर्दानगी इनका बाना है; आना पर जान देना शराफत, कृतज्ञता, वफादारी, नेकी। इसके अलावा जागीरदाराना समाज की सारी बुराइयां भी इनमें मौजूद हैं। इसलिए ये लोग बड़े भावुक हैं। बताशे और कोड़ी पर नाचने वाले कथक, कश्मीरी भांड, जलतरंगिये, बीनवादक, वाजपेयी ब्राह्मण, तबलची, शायर मर्सियागो (मुहर्रम में धार्मिक शोक-काव्य पढ़ने वाले), दस्तानगो, कायस्थ, फौजी,

बांके चंडूबाज, भगतबाज, नक्काल, बहुरूपिये, विद्वान, कलावंत। यहां वीर रस और श्रृंगार रस साथ-साथ प्रवाहित होते हैं। यह अस्ल रूमानी सामाजिक जीवन है।” 76

‘ऐवाने गजल’ में हैदराबाद की मिली-जुली संस्कृति के बार में लिखा है:

“हैदराबाद की इस मिली जुली तहजीब की बुनियाद कुली कुतुवशाह रख गया था। उसने भागमती को मलिका बनाकर हिंदुस्तान लिबास पहनाकर, हिंदुस्तानी त्योहार मनाकर और तेलुगू में शायरी करके हिंदुस्तानी तहजीब को मिलाने की कोई शऊरी कोशिश नहीं की थी बल्कि यह उस कल्चर में रंग जाने पर मजबूर था जो उसके आसपास था। यों ही जैसे अकबर गैरशऊरी तौर पर हिंदुस्तानी तहजीब में रंगता चला गया। वाजिद अली शाह ने होली और कत्थक नाच पर अपने पैर हिलाए।

“और आज किंग कोठी की एक दीमक लगी कुरसी पर मीर उस्मान अली खां बैठे थे। मैला-उटंगा पाजामा पुरानी बदरंगी शेरवानी और मैलखोरी टोपी ओढ़े वह एक बहुत बड़ी यूनीवर्सिटी के लिए कई लाख रुपए खर्च करने की स्कीम बना रहे थे। जहाँ उनकी रिआया अपनी मादरी जबान में तमाम इल्म हासिल कर सकेगी। यह वही निजाम थे, जिन्होंने अपनी तख्तनशीली के दिन गिर जानेवाली चवन्नी को ढूँढने में एक घंटा लागाया था। उन्होंने जागीर, मंसब और खिताब देते वक्त कभी हिंदू और मुसलमान की तरह नहीं सोचा था। हैदराबाद के ब्राह्मण शेरवानी पर तुर्की टोपी पहनते थे और उर्दू अखबर पढ़ने से कभी उनका धर्म खतरे में नहीं जा पड़ता था।

“बहुत-सी हिंदू औरतें ड्योढ़ियां में बेगमें बनी बैठी थीं मगर किसी हिंदू की गैरत को ठेस नहीं लगती थी।

“चेचक की वबा फैलती थी तो मुसलमान औरतें देवी पर चढ़ावे चढ़ाती थीं

और दरगाहों के उर्स में हिंदुओं की तरफ से नजरों (भेंटों) के ख्वान आते। बीबी के अलम (मुहर्रम पर निकलनेवाला झंडा) पर मुसलमानों से ज्यादा हिंदुओं की तरफ से शरबत की सबीलें लगतीं। चांदी के चांद और पंजे चढ़ाते थे। रमजान में हिंदुओं के हां से मस्जिदों में इफ्तारी भेजी जाती थी।

“रियासत का हर मुसलमान तेलुगू जानता था। तमाम हिंदू लड़के उर्दू मीडियम से पढ़ते थे मगर उन्हें कभी मादरी जबान की तरफ से कोई खतरा नजर नहीं आता था क्योंकि अभी उनके दिलों में शको-नफरत की ऐसी आग नहीं भड़की थी जो खूलूस (निष्ठा) के हर फूल को जला डालती है।”⁷⁷

लेकिन यह ध्यान रहे पाकिस्तान संस्कृति के आधार पर नहीं बना, बल्कि वह धर्म के आधार पर बना ‘कितने पाकिस्तान’ में लिखा है: “कोई भी संस्कृति पाकिस्तानों के निर्माण के लिए जगह नहीं देती। संस्कृति अनुदार नहीं उदार होती है। वह मरण का उत्सव नहीं मनाती, वह जीवन के उत्सव की अनवरत श्रंखला है, इसी सामाजिक संस्कृति की जरूरत हमें है क्योंकि वह जीवन का सम्मान करती है।”⁷⁸ धर्म के आधार पर पाकिस्तान तो बन गया लेकिन संस्कृति की ताकत ने उसे एक नहीं रहने दिया। पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान की संस्कृति एक नहीं थी। भाषा एक नहीं थी। पूर्वी पाकिस्तान पर उर्दू लादी गयी और इसकी संस्कृति को खत्म करने का प्रयास किया गया। इसका परिणाम सबके सामने है। एक नया देश— बंगलादेश। ‘छाको की वापसी’ में एक पात्र कहता है: “बंगाली लोग अपने मुलुक के आदमी सबसे बहुत चिढ़ता है। कहता है यह सब कहां से आ गया हमारे देस में।”⁷⁹

बंगाली मुसलमानों की संस्कृति पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमानों की संस्कृति से अलग है। ‘छाकों की वापसी’ में एक पात्र कहता है: “बंगाली मुसलमानों का रहन-सहन और तौर तरीके हम लोगों जैसे नहीं हैं। इन पर

हिंदुओं का बहुत असर है। नमाज रोजे के पाबंद जरूर हैं लेकिन ये लोग आम मुसलमानों से बहुत अलग दिखाई देते हैं।”⁸⁰ यही नहीं इनका इस्लाम भी कुछ अजीब तरह का है। इन्हें कुरान की आयतें पढ़ते सुन लो तो हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाओ। यही लगेगा कि कुरान शरीफ की आयतें नहीं पढ़ रहे हैं बंगाल की कोई किताब पढ़ रहे हैं। अजीब जाहिल और गंवार कौम है इन बंगाली मुसलमानों की। किसी भी लिहाज से इन्हें मुसलमान कहना इस्लाम को बदनाम करना है। इनमें तो उतनी तहजीब और नफासत भी नहीं जो बिहार के बंगाली हिंदुओं में मिलती है।”⁸¹ बंटवारे के बाद पश्चिमी पाकिस्तान के लोग “बंगाली मुसलमानों से उसी तरह नफरत करते हैं, जिस तरह कभी हिंदुओं से नफरत किया करते थे।”⁸²

भाषा

राही मासूम रजा पाकिस्तान व इस्लाम के विमर्श के साथ उर्दू भाषा के मिथक को रोजमर्रा के जीवन में गूँथकर जिस सहजता के साथ उद्घाटित करते हैं, वह अत्यंत दिलचस्प और प्रासंगिक है। उर्दू को लेकर राही सर्वप्रथम इस धारणा का ही खंडन करते हैं कि उर्दू भारत के सभी मुसलमानों की भाषा थी। उर्दू कुलीन व सुरक्षित मुसलमानों द्वारा बोली जाती थी ना कि व्यापक मुस्लिम जन द्वारा, सिद्ध करने के लिए राही ‘आधा गाँव’ में व्यंग्य व उपहास की जो शैली अपनाते हैं, वह अत्यंत रोचक है। फुन्नन दा और वाहिद दा के बीच यह संवाद यहाँ दृष्टव्य है:

“ई का भाई, तू हियां कइसे बइठ गयो?”

“अरे त कहीं अउर बइठ जाओ।” फुन्नन दा ने कहा।

“क्यों बैठ जाऊँ मैं कहीं और!” वाजिद दा ठेठ उर्दू में बोलते लगे।

“हई ल्यो, तूँ त लग्यो उर्दू बोले।”

और यह भी कि “ बड़े भाई की शेरवानियों का बक्स पा जाने के बाद से हम्माद मियां ने उर्दू बोलना शुरू कर दिया था।”⁸² ये वही हम्माद मियां थे जो “हड्डी के कच्चेपन को, रस्म और रिवाज का पूरा एकतराम करके छुपाने की कोशिश करते थे।”⁸³

भाषायी आभिजात्य एवं मुस्लिम लीगी कुलीनता के अंतर्सम्बंध का खुलासा ‘आधा गाँव’ के कथ्य में अलीगढ़ यूनीवर्सिटी से आये पाकिस्तान प्रचारकों एवं तन्नू के बीच हुए संवाद में कुछ यूँ होता है, “आप लोगों ने तो उर्दू को मुसलमान कर दिया है।..... पाकिस्तान बनाने के बाद आप इस उर्दू को यही छोड़ जाएँगे या साथ ले जाएँगे।”⁸⁴ इस उर्दू विमर्श के माध्यम से राही उर्दू के प्रश्न को मुस्लिम अस्मिता का प्रश्न बनाने वाली मुस्लिम लीग को कटघरे में खड़ा करते हैं। जबकि कुर्रतुल ऐन हैदर ‘आग का दरिया’ में उर्दू को लेकर प्रभुत्ववादी सोच का ही अनुगमन करती हैं। पाकिस्तान बनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया का पुनरावलोकन करते हुए ‘आग का दरिया’ के तरक्की पसंद कमाल का निष्कर्ष है : “जबान का मसला हमारी कितनी बदकिस्मती रही है। हिन्दुस्तान से मुसलमान के कदम उखड़ने का दूसरा कारण भी यही है। आज उर्दू को हिन्दुस्तान में सिर्फ मुसलमानों की भाषा समझा जा रही है, हालांकि उर्दू-हिन्दू और मुसलमान दोनों की तहजीवी और आम बोलचाल की भाषा थी।”⁸⁵

कुर्रतुल ऐन हैदर अपने औपन्यासिक विमर्श को जिस गंगाजमुनी राष्ट्रवादी पदावली में प्रस्तुत करती हैं, उसमें उर्दू को लेकर उपरोक्त सरलीकरण स्वाभाविक ही था। वे अपने औपन्यासिक विमर्श में उर्दू को मुसलमान के कदम उखड़ने का दूसरा कारण बताती हैं। पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री लियाकत अली ख़ाँ ने भी पाकिस्तान की संविधान सभा में 1928 में कहा था कि “पाकिस्तान भारतीय

उपमहाद्वीप के दस करोड़ मुसलमानों की मांग पर बना है और दस करोड़ मुसलमानों की भाषा उर्दू है। “ जबकि पाकिस्तान सरकार की 1951 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार पाकिस्तान के सिर्फ 7.2 प्रतिशत लोगो ने ही स्वयं को उर्दू भाषी बताया और उसी वर्ष की भारतीय जनगणना के अनुसार भारतीय मुसलमानों में सिर्फ 38 प्रतिशत की स्वयं ही उर्दू भाषी मानते थे। यहाँ तक कि उत्तर प्रदेश के 48 प्रतिशत मुसलमानों ने ही उर्दू को अपनी भाषा माना । इसी प्रकार भारत के 62 प्रतिशत मुसलमानों की भाषा उर्दू नहीं थी, और पाकिस्तान में उर्दू न बोलने वाले 93 प्रतिशत थे। विडम्बना यह थी कि हिन्दुस्तान में उर्दू बोलने वालों की संख्या पाकिस्तान के उर्दू भाषियों से पांच गुना अधिक थी।

राही मासूम रजा जनगणना के आँकड़ों का सहारा लिए बिना ‘उर्दू—मुसलमान—पाकिस्तान’ की उस साम्प्रदायिक सोच में सूराख करते हैं, जो हिन्दू व मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिकों द्वारा गढ़ी गयी थी। लेकिन यह करते हुए वे भारतीय मुसलमान को हिंदी हिंदुस्तान के राष्ट्रवादी विमर्श का हिस्सा नहीं बनाते । गंगौली के सामान्य मुसलमानों के लिए नफीस उर्दू जितनी परायी थी, उतनी ही परिष्कृत हिन्दी। राही मासूम रजा भाषा को लेकर आम व गैर पढ़ी-लिखी जनता बनाम सुसंस्कृत व आभिजात्य जन का विमर्श रचते हैं। एम. एल. ए. बनने के बाद जब परशुराम चमार शहरी लोगों की भाषा बोलने लगता है तो “फुन्नन मियां ने हैरानी से कहा, ‘तैं त कांगरेसी होके अपनी जबनियां भुल गया।’ यह बात न फुन्नन मियां की समझा में आयी और न मिगदाद की कि आखिर दिल्ली में उस भाषा से काम क्यों नहीं चल सकता जिससे गंगौली में काम चल रहा है।”⁸⁶ लेकिन भाषा का यह जनपक्षीय विमर्श करते हुए राही फारसी लिपि से मुसलमानों के रुहानी लगाव की अनदेखी नहीं करते— मन्नो द्वारा देवनागरी लिपि में नौहा पढ़े जाने के इस दृश्य से यह स्पष्ट है—

‘नौज!इ निखौन्दी कौन जबान है भाई’ उम्मे हबीबा से न रहा गया तो तड़ से बोलीं । ‘हिन्दी’ मन्नो ने जवाब दिया ।

‘तोबा इस्तफगार’ सईदा की मां ने अपने गालों पर आहिस्ता आहिस्ता तमाचा मारते हुए कहा, ‘अब अल्ला रसूल का नमवा मुई हिन्दी में लिखा जाये लगा ।’

‘उर्दू का नाम ते सुने रहियो, अरबी फार्सी का नाम भी सुने रहियो ...बाकी ए कौन जबान निकल आयी है ? रब्बन बी ने सवाल किया ।

‘बशीर भाई की सुरैया ने तो हिन्दी में नमाज लिख कर याद की है ।’ मन्नो ने कहा । ‘ता ई तो कोनो बात न है ।’ सकीना ने कहा, ‘कि जौन मामू की लड़कियन करें तीने तूहो करो ।’

‘पढ़ो यही पढ़ो ।’ सईदा ने मन्नो से कहा, ‘चलो में तुम्हारे साथ पढ़ती हूँ ।’

मगर मजलिस हवन्नक हो गयी । नौहा वही था, लब्ज वही थे, लहजा वही था । बस एक लिपि की अजनबीयत ने बीबियों को चिढ़ा दिया था । चुनांचे न किसी की आंख नम हुई और न किसी ने बैन किया ।⁸⁷

‘आधा गांव’ का यह भाषायी विमर्श ‘पाकिस्तान-उर्दू-मुसलमान’ की मुस्लिम लीगी अवधारणा एवं हिन्दू के ‘हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान’ के उन्मादी विमर्श को एक साथ ध्वस्त करता है । राही जहां पारम्परिक मुस्लिम सोच की हिन्दी के प्रति असहजता को रेखांकित करते हैं, वही वे मुसलमानों की नयी पीढ़ी द्वारा हिन्दी के प्रति असहजता को रेखांकित करते हैं, वही वे मुसलमानों की नयी पीढ़ी द्वारा हिन्दी अपनाये जाने की सूचना भी दर्ज करते हैं । निश्चित रूप से ‘आधा गांव’ का यह जटिल भाषा विमर्श भारतीय मुसलमान की कथित उर्दू ग्रंथि को समझने में सहायक है ।

संदर्भ

1. मुशीर-उल-हक- धर्म निरपेक्ष भारत में इस्लाम, पृ. 16
2. एस. राधाकृष्णन- धर्म और समाज ,
3. पी. बी. गजेन्द्र गडकर का लेख- 'द कन सेप्ट ऑफ सेक्यूलरिज्म',
सेक्यूलर डेमोक्रेसी, नयी दिल्ली, वार्षिक अंक, 1970, पृ. 71
4. सैयद आबिद हुसैन- द डेस्टिनी ऑफ इंडियन मुस्लिम्स, पृ. 170
5. मुशीर-उल-हक- धर्म निरपेक्ष भारत में इस्लाम, पृ. 12
6. उद्धृत, उप. पृ. 21
7. उप.
8. उप.
9. उप. 24-25
10. बिपिन चंद्र- आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, पृ. 11
11. बिपिन चंद्र- आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, पृ. 03
12. प्रदीप सक्सेना (संपा.)- इतिहास का सच और सच का इतिहास
13. बिपिन चंद्र, उप. पृ. 32
14. उप. 38
15. ✓ उप. 294
16. आग का दरिया, पृ. 263
17. उप. 264
18. द्रष्टव्य, बिपिन चंद्र- आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, पृ. 158
19. उप.
20. मुहम्मद अली जिन्ना- राइटिंग्स एंड स्पीचिज, खंड-1 , पृ. 161

21. उप. 230
22. मुइन शकिर— खिलाफत टू पाकिस्तान, पृ. 200
23. जिन्ना पूर्वोक्त, पृ. 229
24. उप. 404
25. शौकत अली, उद्धृत, रामगोपाल पृ. 266-67
26. जेड. ए. सुलेरी— माई लीडर, पृ. 162
27. सी. मैशर्ट— हिन्दू मुसलिम प्रब्लम इन इंडिया, पृ. 33
28. रिपोर्ट ऑफ द कानपुर राइट्स इन्क्वारी कमिटी, पृ. 105
29. द्रष्टव्य, बिपिन चंद्र, पूर्वोक्त, पृ. 171
30. द्रष्टव्य, एम. हबीब— चंगेज खॉन एंड द मंगोल्स
31. बिपिन चंद्र, उप. पृ. 173
32. उप.
33. डा. राधा कृष्णन— धर्म और समाज, पृ. 17
34. उप. 40
35. रामधारी सिंह दिनकर— संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 589
36. जान क्यूबर— सोसियोलोजी ए. सनोप्सिज ऑफ प्रिंसिपल्स, पृ. 566
37. इमील दुखीम— एलीमेंटरी फोर्मस ऑफ रिलीजिअस लाइफ, पृ. 47
38. पी. सी. जोशी— मिथ्स: ओल्ड एंड न्यू
39. आधा गांव, पृ. 13
40. उप. 18
41. उप. 234
42. उप. 65
43. उप. 74-75

44. उप. 75.
45. छाको की वापसी, पृ. 24
46. उप. पृ. 22-23
47. ऐवाने गज़ल, पृ. 17
48. आग का दरिया, पृ. 103-104
49. उप. 138
50. उप. 284-85
51. कितने पाकिस्तान , पृ. 218
52. विजय देव झारी- हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन, पृ. 63
53. श्यामाचरण दुबे- मानव और संस्कृति, पृ. 22
54. उप. 17
55. हिंदी शब्द सागर-10, पृ. 4896
56. मानक हिंदी कोश -5 , पृ. 243
57. हिंदी विश्व कोश, पृ. 440
58. मैकाइवर एंड पेज-सोसाइटीरू पृ. 449
59. मानव और संस्कृति, पृ. 17
60. टैगोर- द सेंटर ऑफ इंडियन कल्चर, पृ. 15
61. नेहरू- डिसकवरी ऑफ इंडिया
62. उप.
63. संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 653
64. मंगल देव शास्त्री- भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ. 04
65. बिपिन चंद्र- आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, पृ. 132
66. डेजिल इबेट्सन- पंजाब कास्ट्स , पृ. 13

67. उप. 14
68. उप.
69. ए. के. दुर्गानी— द मीनिंग ऑफ पाकिस्तान पृ. 43
70. बी. सी. पाल— मेमोयर्स ऑफ माई लाइफ एंड टाइम्स, पृ. 109—10
71. द इकानामिक सर्वे ऑफ नागल, पृ. 02
72. राजेन्द्र प्रसाद— आत्मकथा, पृ. 13—14
73. उप. 14
74. बिपिन चंद्र— आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, पृ. 148
75. उप. 149
76. आग का दरिया , पृ. 137
77. ऐवाने गज़ल ,पृ. 76
78. कितने पाकिस्तान , पृ. 182
79. छाको की वापसी, पृ. 13
80. उप. 21
81. उप. 69
82. उप. 111
83. आधा गांव ,पृ. 39
84. उप. 119
85. उप. 261
86. आग का दरिया , पृ. 449
87. आधा गांव ,पृ. 281
88. उप. 314

संदर्भ ग्रंथ

- अनवर, अली : मसावात की जंग ,2001
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- इंजीनियर, असगर अली
: भारत में साम्प्रदायिकता: इतिहास और अनुभव, 2004
इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद
- उपाध्याय, भगवत शरण
: भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण
पीपुल्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- कमलेश्वर : कितने पाकिस्तान,
राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
- कोसांबी, डी0डी0
: प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- गोयल, देशराज
: राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ
- चंद्र, बिपन
: आधुनिक भारत, प्र. सं,
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली।
: आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, 1998, उप.
: आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति ,प्र.स., उप.
: भारत का राष्ट्रीय आंदोलन, उप.

- : भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास, 1993, उप.
- : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, 2001, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
- : आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, 1997, उप.
- चन्द्र, सुधीर : हिन्दू, हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान, 2005, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- जोशी, प्रभाष : हिन्दू होने का धर्म, 2001 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- झारी, विजयदेव : हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन, 1987 शारदा प्रकाशन, दिल्ली
- दत्त, रजनी पाम : आज का भारत, 1991, मैकमिलन इंडिया लि. नई दिल्ली,
- : भारत वर्तमान और भावी, प्र.स., पीपुल्स पब्लिकशिगं हाउस, दिल्ली
- दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, 1970 उदयाचल प्रकाशन, पटना
- दीक्षित, प्रभा : सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक सन्दर्भ देसाई, ए. आर.
- : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, 1977, मैकमिलन इंडिया लि., नई दिल्ली।

- दुबे, अभय कुमार
: सांप्रदायिकता के स्रोत, 1993
विनय प्रकाशन, दिल्ली
- दुबे, श्यामाचरण
: मानव और संस्कृति, 1993
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- नंबूदरीपाद, ई.एस.एस.
: गांधीजी और उनका वाद, प्र. स.
नेशनल बुक सेंटर, नई दिल्ली
- नागर, अमृत लाल
: गदर के फूल
राजपाल एण्ड संस
- प्रसाद, डॉ० राजेन्द्र
: आत्मकथा
नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
- : खण्डित भारत
- बदी उज्जमा : छाको की वापसी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- बानो, जीलानी : ऐवाने गजल (पेपर बैक),
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- मिश्र, अखिलेश
: धर्म का मर्म, 2004
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- यशपाल : झूठा सच, (दो भाग)

- लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- रजा, राही मासूम
: आधा गाँव
राजकमल प्रकाशन०
- राधा—कृष्णन, एस०
: धर्म और समाज, 1972
राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
- : धर्म तुलात्मक दृष्टि में 1969 उप०
- सव्यसाची : भारत की स्वाधीनता का इतिहास
- साहनी, भीष्म : तमस
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- शर्मा, गीतेश : सांप्रदायिकता एवं सांप्रदायिक दंगे, 1985
समायोजन प्रकाशन, कलकत्ता
- : धर्म के नाम पर, 2003
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- शर्मा, नासिरा : राष्ट्र और मुसलमान, 2002
किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली
- शर्मा, रामविलास
: भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (दो भाग) 1993,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- : भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (दो भाग) 1999,
किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली
- : भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद, 1992,
हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

- शर्मा, रामशरण
- : मार्क्सवाद और भारत, प्र. स. , आगरा
- शास्त्री, मंगलदेव
- : प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
 - : प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था,
भारतीय संस्कृति का इतिहास, 1970
भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
- शुक्ल, आर. एल.(संपा.)
- : आधुनिक भारत का इतिहास, 2000,
हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
- सरकार, सुमित
- : आधुनिक भारत, 1993, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
 - : बंगाल में स्वदेशी आंदोलन, 1997, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
- सिंह, आयोध्या
- : भारत का मुक्ति संग्राम (प्र. सं)
मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि., नई दिल्ली
 - : समाजवाद: भारतीय जनता का संघर्ष,
प्र. स., अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
 - : साम्राज्यवाद का उदय और अस्त, 1947,
रेखा प्रकाशन, कलकत्ता
- सिंह, भरत
- : हिंदी जाति, क्रांतिकारी जनवाद और डा. रामविलास शर्मा, 1993
गोदारण प्रकाशन, अलीगढ़

- : प्रतिश्रुति और परिवर्तन, 2000,
स्वराज प्रकाशन, दिल्ली
- हक, मुशीर-उल
: धर्मनिरपेक्ष भारत में इस्लाम, 1977
राधा-कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- हुसैन, अब्दुल्ला
: उदास नस्लें
- हैदर, कुर्रतुल ऐन
: आग का दरिया
किताब घर, इलाहाबाद

पत्रिकाएं

तद्भव, अंक-पांच, सम्पादक-अखिलेश, लखनऊ

अंग्रेजी ग्रंथ

- अली, एस. एस. : दि जियोग्राफी ऑफ दि पुराणाज
आजाद, मौ.अबुल कलाम : इंडिया विंस फ्रीडम
कॉपलैंड : इंडियन रिस्टेटमेंट
गांधी, मोहनदास करमचंद : माई एक्सपैरीमेंट विद ट्रुथ
चिरोल, वी. : इंडिया ओल्ड एंड न्यू
जिन्ना, मुहम्मद अली : राइटिंग्स एण्ड स्पीचिज
टैगोर, रवीन्द्रनाथ : द सेंटर ऑफ इंडियन कल्चर
दुर्रानी, ए०के० : द मीनिंग ऑफ पाकिस्तान

थोम्पसन और गैटर	:	राइज एंड फुलफिलमेंट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया
नेहरू, जवाहरलाल	:	ओटोबायोग्राफी
पोलाक, एच.एस.	:	महात्मा गांधी
बोस, सुभाष चंद्र	:	इंडियन स्ट्रगल
मजूमदार, आर.सी.	:	हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया
मेनन, वी. पी.	:	ट्रांसफर ऑफ पावर इन इंडिया
मैकाइवर और पेज	:	सोसाइटी
मैशर्ट, सी.	:	हिन्दू मुस्लिम प्रॉब्लम इन इंडिया
सुलेरी, जेड.ए.	:	माई लीडर
शर्मा, जी.एन.	:	मेवाड़ एण्ड द मुगल इंपायर
शाकिर, मोइन	:	खिलाफत टू पाकिस्तान
हुसैन, सैय्यद आबिद	:	द डेस्टिनी ऑफ इंडियन मुस्लिम्स